वर्ष पाँचवां] श्रीरामतीर्थ ग्रन्थावली [खंड चौथा

श्री

स्वामी रामतीर्थ

उनके सदुपदेश—भाग २८

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण प्रति २००० } —:*:— { सितम्बर १९२४ भाद्र १९८१

फुटकर

जिल्द ॥=) सजिल्द ॥।=)

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ
भारत वर्ष	१
धर्म और सदाचार	१४
दर्शन शास्त्र	३८
प्रेम और भक्ति	६७
त्याग वा संन्यास	७२
ध्यान वा समाधि	७८
आत्मानुभव	८४
राम	८७
आनन्द की फुहार	६८

Printed by K. C. Banerjee at the Anglo-Oriental Press, Lucknow,—1924

विज्ञप्ति

परम हंस स्वामी राम के समग्र हिन्दी ग्रन्थ आज ईश्वरानुग्रह से इस २८ वें भाग से सम्पूर्ण प्रकाशित हो गये। इस भारी कार्य की पूर्ति की कृतज्ञता में और स्वामी राम के जन्मोत्सव की प्रसन्नता में [कि जो अगले मास में होगा] लीग के प्रबन्धक मण्डल ने यह आज्ञा दे दी है कि १५ अक्टूबर से २८ अक्टूबर तक राम के समग्र हिन्दी ग्रन्थ आधे दाम पर ग्राहकों को दे दिये जावें। वी. पी के आर्डर १५ अक्टूबर तक आ जाने चाहिये और आर्डर के साथ २ एक चौथाई दाम भी पेशगी आने चाहिए और नकद दाम दे कर खरीदने वाले ग्राहक २८ अक्टूबर तक इन ग्रन्थों को आधे दाम पर ले सकते हैं। राम प्यारों को इस शुभावसर पर रामोपदेशों के प्रचार का खूब प्रयत्न करना चाहिये।

भवदीय
मैनेजर

निवेदन ।

ईश्वर का धन्यवाद है कि लीग अपने निरन्तर परिश्रम और प्रयत्न से ब्रह्मलीन परम हंस स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के समग्र लेखों व उपदेशों का हिन्दी अनुवाद आज इस २८ वें भाग से समाप्त कर सकी। अब स्वामी जी महाराज का कोई ऐसा लेख वा उपदेश बाकी नहीं रहा कि जो ग्रन्थावली के अन्दर प्रकाशित न हो चुका हो। यदि किसी राम प्यारे के पास किसी रीति से ऐसा कोई लेख वा उपदेश हो, तो वह कृपया शीघ्र भेज दे, जिस से इस ग्रन्थावली में वह शामल हो सके, इस वर्ष के अब दो भाग प्रकाशित होने शेष रह गये हैं, जो आशा है कि शीघ्र निकाले जायेंगे। पर अब इस ग्रन्थावली में पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध वेदान्त वेत्ता बाबा नगीना सिंह वेदी आत्मदर्शी के लेखों का हिन्दी अनुवाद निकाला जायगा। सब से पहिले उक्त बाबा साहिब की प्रसिद्ध पुस्तक वेदानुवचन का अनुवाद हाथ में लिया है। इस का पहिला अंक अगले मास में प्रकाशित होगा।

यह सब राम-प्यारों को विदित ही है कि लीग का अपना प्रैस न होने से नियत समय पर ग्रन्थावली का प्रकाशित कराना उस के लिये कठिन तम हो रहा है, और जब तक राम प्यारे अपनी उदारता से लीग की पूरी २ सहायता करके इस का निजी प्रैस न खुलवा देंगे, तब तक इस के काम में विलम्ब की शिकायत नित्य ही नवी रहेगी। और इस अनिवार्य विलम्ब के लिये महें आशा है कि राम प्यारे क्षमा करते रहेंगें, और इस त्रुटि के होते हुए भी अपनी प्रेम भरी सहायता बनाये रक्खेंगे।

मन्त्री.

भूमिका ।

बहुत काल से राम प्यारों के हृदयों में यह विचार उठ रहा था कि स्वामी राम के समग्र उपदेशों का एक संक्षिप्त-गुटका प्रकाशित हो जिस में राम भगवान् के अमूल्य और उपयोगी तथा अनुभव सिद्ध उपदेशों का सार उद्धृत हो ।

यह विचार लंका द्वीप के राम-भक्त प्रेम चीनैया के हृदय में इतने तीव्र वेग से तरंगें मारने लगा कि उस से विवश होकर प्रिय चीनैया जी ने प्रभाव-शाली रामोपदेशों को वर्ष के ३६५ दिनों में विभक्त करके और रामडायरी के नाम से पुस्ताकार बनाकर उसे नारायण के पास भेजा । ये उपदेश किसी एक विचार की लड़ी में पुरोये हुए नहीं थे, बल्कि भिन्न २ विषयों के केवल दिन के क्रम से संगठित थे । जिस से अभ्यासी पुरुष के चित्त पर किसी एक रंग में निरन्तर प्रभाव नहीं डाल सकते थे । इस लिये इस क्रम के बदलने की और अन्य रामोपदेशों के बढ़ाने की आवश्यकता पड़ी । नारायण ने अत्यावश्यक और अत्योपयोगी रामोपदेशों को दिन के क्रम से नहीं किन्तु विचार की लड़ी में पुरो कर नव अध्यायों में विभक्त कर दिया है जिस से एक२ विचार का जिज्ञासु उसी विचार के निरन्तर अभ्यास से अपने हृदय को उस से रंग सके । ये उपदेश राम के मस्त हृदय से हृदयांग होकर बहे हुए हैं इस लिये इस संग्रह का नाम राम-हृदय रक्खा गया है ।

आशा है जो सज्जन इस पुस्तक के किसी अध्याय का दत्त चित्त से निरन्तर अभ्यास करेंगे वे राम के समान प्रफुल्लित और प्रसन्न चित्त हुए बिना न रहेंगे ।

नारायण

राम-हृदय.

परमहंस स्वामी रामतीर्थ।

लखनऊ १६०५

स्वामी रामतीर्थ ।

(१) भारत-वर्ष ।

१

कोई मनुष्य सर्व रूप परमात्मा से अपनी अभेदता तब तक कदापि अनुभव नहीं कर सकता जब तक कि समग्र राष्ट्र के साथ अभेदता उस के शरीर के रोम रोम में जोश न मारती हो ।

२

यह देख कर कि सारा भारत वर्ष प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान है, प्रत्येक भारत सपूत को उस सारे की सेवा में तत्पर रहना चाहिये ।

३

किसी व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को राष्ट्रीय धर्म से

ऊँचा स्थान न देना चाहिये, उन्हें ठीक प्रमाण से रखना ही सुख लाता है।

४

राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना ही आधिदैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

५

ईश्वरानुभवार्थ आवश्यकता है संन्यास भाव की-अर्थात् स्वार्थ को नितान्त त्याग कर इस परिच्छिन्नात्मा को भारत माता के महान् आत्मा से बिल्कुल अभिन्न करने की।

६

परमात्मा या परमानन्द के अनुभवार्थ आवश्यकता है ब्राह्मण भाव की-अर्थात् राष्ट्र की उन्नति के उपाय सोचने में अपनी बुद्धि समर्पण करने की।

७

परमानन्द के अनुभवार्थ आवश्यकता है अपने में क्षत्रीय भाव रखने की-अर्थात् देश के वास्ते प्राण न्योछावर करने के लिए प्रति क्षण तत्पर रहने की।

८

परमात्मा के अनुभवार्थ आवश्यकता है अपने में सच्चा वैश्य भाव रखने की-अर्थात् अपने धन को राष्ट्र की धरोहर समझने की।

९

परन्तु परमानन्द व राम को इस लोक वा परलोक में अनुभव करने के लिए और अपने निजी सूक्ष्म (अमूर्त्त) धर्म को बाह्य प्रत्यक्ष जीती जागती मूर्ति बनाने के लिए तुम्हें अपने हाथों पैरों से उस परिश्रम द्वारा, कि जो कभी शूद्रों के ज़िम्मे छोड़ रक्खा था, इस संन्यास भाव, ब्राह्मण, क्षत्रीय

और वैश्य की वीरता को आचरण में लाना होगा। संन्यासी भाव शूद्रों के उद्योग में परिणित होना चाहिये। आज तो केवल यही उपाय है। जागो, जागो।

१०

संसार में केवल एक ही रोग है और एक ही औषधि है। दैवी-विधान के आचरण से ही राष्ट्र निरोग और स्वतंत्र बनाए जा सकते हैं। उसी से मनुष्य देवताओं से अधिक श्रेष्ठ और महात्मा बनाए जा सकते हैं।

११

अधिकार जमाने के भाव को छोड़ने में, वेदान्त के संन्यास-भाव को ग्रहण करने में ही राष्ट्रों और व्यक्तियों की मुक्ति निर्भर है। इस से इतर और कोई मार्ग नहीं है।

१२

भारत में असंख्य शक्तियों का प्रभाव परस्पर एक दूसरे से विपरीत होने के कारण मिट जाता है, जिस से उन का परिणाम शून्य होता है। क्या यह अफसोस की बात नहीं है? इस का कारण क्या है?—यह कि प्रत्येक दल अपने पड़ोसियों की त्रुटियों पर ही अपना ध्यान डालता है।

१३

हा तिरस्कार करने योग्य सत्कार! किसी देश में उस समय तक एकता और प्रेम नहीं हो सकते जब तक कि तुम एक दूसरे के दोषों पर ज़ोर देते रहते हो।

१४

सफलता-पूर्वक जीवित रहने का रहस्य अपना हृदय मातृवत बनालेने में है; (क्योंकि) माता को अपने बच्चे छोटे या बड़े सभी प्यारे लगते हैं।

१५

माता शब्द ऐसा है कि जो हिन्दूमात्र के हृदय से गहरे से गहरा भाव उत्पन्न करता है।

१६

भारत वर्ष में प्रायः प्रत्येक नगर, नदी, पहाड़ी, पत्थर या पशु की कल्पित मूर्ति बनाई जा कर उस की प्रतिष्ठा की जाती है। क्या अभी उत्तम समय नहीं आया है, कि सारी मातृ-भूमि को देवी रूप समझा जाय और उस की प्रत्येक एक-देशीय विभूति हम में सारे भारत वर्ष की भक्ति भर दे?

१७

आप से स्थापित किये हुए श्वेत, ऊँचे मन्दिर और पत्थर के विष्णु आप के हृदय के पाप को शान्त नहीं करेंगे।...पूजो, देश के इन भूखे नारायणों और परिश्रम करने वाले विष्णुओं को पूजो।

१८

अपने हाथ से बनाई अग्नि के मुख में बहु-मूल्य घी व्यर्थ नष्ट करने के स्थान पर आप सूखी रोटी के छिलकों को उस जठराग्नि के अर्पण क्यों नहीं कर देते कि जो जीवित किन्तु भूखे मरते लाखों नारायणों के हाड़ मास को खाए जा रही है?

१९

सर्वोपरि श्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्य को दे सकते हैं, वह विद्या वा ज्ञान का दान है। आप किसी मनुष्य को आज भोजन खिला दें तो कल वह फिर उतना ही भूखा हो जायेगा। उस को कोई कला (हुनर) सिखला दें तो आप

उसे जीवन पर्य्यन्त अपनी जीविका प्राप्त करने के योग्य बना देते हैं।

२०

भारत वर्ष की दान शीलता भूखे मरते हुए श्रम-जीवियों (शूद्रों) की कोई अधिक सुध नहीं लेती, वरन् वह ईश्वर के भण्डार में पाषाणावत् जड़ बने हुए धर्म के उच्च प्रतिनिधियों (ब्राह्मणों) को, पहिले ही से तृप्त आलसियों को भोजन दिलवाकर दान शील दाताओं को सीधा स्वर्ग में ले जाती है।

२१

दुर्बल-चित्त यात्री जो निरन्तर मुफ्तखोरे आलसियों को कुछ नक़दी दे देता है, परलोक में अपनी आत्मा के उद्धार निमित्त कुछ कर लेने से भले ही अपने को सराह सकता है। चाहे जो भी हो, पर इस में तो किंचित संदेह नहीं है कि उस ने इस समय इस लोक में इस राष्ट्र के पतन करने के लिए अवश्य कुछ कर डाला है।

२२

आधी जनता भूखों मर रही है। शेष आधी तो स्पष्ट फ़ज़ूल-खर्ची, आवश्यकता से अधिक सामान, सुगन्ध की बोतलों, मिथ्या गौरव, ऊपरी प्रभाव वाले व्यवहार, समस्त प्रकार की बहु-मूल्य व्यर्थ खेलों, गन्दे धन और रोग-जनक दिखावे (ज़ाहरदारी) से दबी पड़ी है।

२३

भारतवर्ष का साधारण गृहस्थ और राष्ट्र की दशा का चित्र है—बहुत थोड़ी सी तो आमदनी, और तिसपर प्रतिवर्ष खाने वालों की संख्या में वृद्धि ही नहीं, वरन् निरर्थक और दुःखदाई रस्मोंमें दासता भावसे अनुचित खर्च।

२४

भारतीय राजा और अमीर अपने सारे बहु-मूल्य रत्नों और शक्ति को खोकर पोली झनझनाती हुई उपाधियों, और निस्सार फोके नामों से युक्त गलीचे के शेर रह गए हैं।

२५

आज कल के साम्य वादियों की सब से बड़ी भूल यह है कि वे नाम मात्र के धनवानों के भार पर करुणा दिखलाने की जगह, उनके अधिकार में जो 'समुद्र फेन की बूंद' (कुछ थोड़ा सा धन) है, उस के लिए उन से डाह करते हैं।

२६

इंग्लिस्तान में वास्तव में कुछ फ़सलें नहीं होतीं, और तो भी देश समृिद्धशाली है। क्या कारण? क्योंकि हाथों के देवता इन्द्र को कलाओं और उद्योग धन्धों का भोग इतना दिया जाता है, कि अजीर्ण की सीमा तक पहुँच जाता है।

२७

कूड़ा करकट को फैंक देना, मृत पशुओं की हड्डियों को स्पर्श करने से डरना और जिनको लोग मलबा कहते हैं उन सब प्रकार की चीज़ों से घृणा करके एक प्रकार का नासिका-रोग उत्पन्न कर लेना, भारतवर्ष की दरिद्रता का सर्व-प्रधान कारण है।

२८

भारतवर्ष की अधोगति अर्थात् भारतवर्ष के पतन का कारण वेदान्त-दर्शन समझाता है कि यह कर्म का विधान है।

२९

कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिए देशभक्ति का अर्थ भूतकाल की अदृष्ट महानता पर निरन्तर आलोचना करना है। ये दीवालिए साहूकार हैं, जो बहुत पुराने बही-खातों पर जो कि अब व्यर्थ हैं, गहरी देख भाल कर रहे हैं।

३०

होने वाले सुधारक युवक! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थ निष्ठा की निन्दा मत कर। इस प्रकार विरोध का एक नया बीज बो देने से भारत वर्ष के मनुष्य एकता को प्राप्त नहीं कर सकते।

३१

तुच्छ अहंकार को त्याग कर और इस प्रकार देश का समस्त रूप होकर आप कुछ भी महसूस करो, तो आपका देश आपके साथ महसूस करेगा। आप आगे बढ़ो, तो आप का देश आपके पीछे चलेगा।

३२

उन्नति का वायु-मण्डल सेवा और प्रेम है, हुकम और मजबूरी नहीं, अर्थात् सेवा और प्रेम से उन्नति होती है विधि-निषेध भरी आज्ञाओं से नहीं।

३३

जो मनुष्य लोगों का नेता बनने के योग्य होता है, वह अपने सहायकों की मूर्खता, अपने अनुगामियों के विश्वास-घात, मानव-जाति की कृतघ्नता और जनता की गुण-ग्रहण हीनता की कभी शिकायत नहीं करता।

३४

किसी देश का बल छोटे विचार के बड़े आदमियों से

नहीं किन्तु बड़े विचार के छोटे आदमियों से बढ़ता है।

३५

पूर्ण प्रजातन्त्र-शासन, समता, बाहरी सत्ता का भार उतार फेंकना, धन एकत्र करने के व्यर्थ भाव को दूर रखना, समस्त असाधारण अधिकार को परे फेंक डालना, बड़प्पन की शान को ठुकरा देना, और छुटपन की घबराहट को उतार डालना यह भौतिक दृष्टि से वेदान्त है।

३६

प्रत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वयं निर्धारित करने के लिए एक समान स्वतंत्रता रखने दो: मस्तक चाहे जितना ऊंचा रहे, परन्तु पांव सदा एक समान पृथ्वी पर ही रहें। कभी किसी मनुष्य के कन्धे अथवा गर्दन पर न हों, चाहे वह स्वयं निर्बल अथवा इच्छुक ही क्यों न हो।

३७

झूठे राजनीतिज्ञ तो शक्ति के प्रधान स्वर बजाये विना ही, अर्थात् स्वतन्त्रता और प्रेम के भाव को लाये विना ही राष्ट्र की उन्नति लाने की सोचते हैं।

३८

अमेरिका और यूरुप का उत्थान ईसा के व्यक्तित्व के कारण से नहीं है। उन्नति का असली कारण अज्ञात रूप से वेदान्त का आचरण है। भारतवर्ष का पतन आचरण में वेदान्त के न रहने से हुआ है।

३९

विदेशी राज-नीतिज्ञों से बचने का एकमात्र उपाय आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विधान अर्थात् अपने पड़ोसी से प्रेम करने के नियम का अपने जीवन में चरितार्थ करना है।

४०

शुद्धता या अशुद्धता के नाम पर, हम को क्या अधिकार है कि ईश्वर की गुप्त-चर मण्डली (खुफिया पुलिस) के स्वयं निर्वाचित सदस्य का भाग लें और ऐसे मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र में झांकें जिसका सामाजिक जीवन देश के लिए हितकर वा सहायक हो।

४१

हिन्दू लोगों में हम को नुक़्ताचीनी नहीं, किन्तु गुण ग्रहण का भाव, भ्रातृत्व की भावना, समन्वय की बुद्धि, धर्मों व कार्य्यों का समानाधिकरण और श्रम की प्रभुता को जागृत करना है।

४२

अपने व्यक्तित्व को सारे समाज और सब राष्ट्रों तथा प्रत्येक वस्तु के विरुद्ध दृढ़ता-पूर्वक प्रतिपादन करो।

४३

अपनी बुद्धि (विचारों) का देश भर की बुद्धि को समर्पण कर देना, अथवा देश के कल्याणार्थ ऐसे चिन्तन करना कि मानो देशवासियों से इतर मैं कुछ नहीं हूं. यह बृहस्पति देव निमित्त यज्ञ है।

४४

यदि विदेशों में अपना निर्वाह करने से इतर और अधिक तुम से नहीं हो सकता, तो वहीं रहो। और यदि तुम्हें भारत माता की दुखती हुई छाती पर निकम्मी (निश्चेष्ट) रेंगती हुई जोंक बनना पड़े, तो अरब के सागर (Arabian Sea) में कूद पड़ो और भारतवर्ष में फिर पैर रखने की बजाय अर्बी सागर के आतिथ्य का भाग लो।

४५

पश्चमीय विज्ञान से डर कर भागने की बजाए आज हिन्दू उस को अपनी ब्रह्म—विद्या (श्रुति) का सर्व-प्रधान सहायक मान कर स्वागत करें।

४६

जब कि जाति और वंश के भावों का कांच का पर्दा दिलों का मिलाप नहीं होने देता, उस समय यदि तुम बातें (मामलें) विवेक और न्याय द्वारा निपटाना चाहो तो तुम हानि कारक निकटता में आ जाते हो।

४७

धार्मिक मत मतान्तर ने लोगों के मनुष्यत्व को मेघा-च्छादित (धुंधला) कर डाला है और सामान्य स्वदेशा-भिमान के भाव को ग्रहण लगा दिया है वा ग्रस लिया है।

४८

भारत के भक्तो ! उस मधुर मुख ग्वाले (भगवान् कृष्ण) के तुम प्यारे प्रेम-पात्र बन जाओगे, जब तुम दिव्य प्रेम के साथ चाण्डाल में, चोर में, पापी में, अभ्यागत में और सब में दिव्य-प्रेम से उस (प्रभु) के दर्शन करोगे और उस (प्रभु) को केवल पत्थर की मूर्ति ही में परिमित न रहने दोगे।

४९

ग़लती से जिन को तुम 'पतित' कहते हो, वे अभी "उठे नहीं" हैं। वे उसी प्रकार से विश्व-विद्यालय के नौ-आगन्तुक विद्यार्थी हैं, जिस प्रकार किसी समय तुम भी थे।

५०

भारत-वर्ष के प्यारे कट्टर (शास्त्र-परायण] मनुष्यो ! शास्त्रों का उचित प्रयोग करो। देश का धर्म तुम से जाति

के कठोर से कठोर नियमों को ढीला करने और तीक्ष्ण जाति-भेद-भाव को सहानुभूति से दवा देने को कहता है।

५१

मेरे प्यारे हिन्दुओ। परिवर्तन से अथवा समय-अनुकूल वनने से घृणा करके और पुरानी रीतियों तथा वंश-परम्परा पर अधिक ज़ोर देकर अपने को मनुष्यता के आसन से नीचे मत गिराओ।

५२

रेखांश (Longitudinally अर्थात् समय के) विचार से तुम्हारा संवंध भले ही हिमांचलके ऋषियों की वंश-परम्परा से हो, परन्तु अक्षांश (Latitudinally अर्थात् देश) के विचार से अमेरिका और यूरुप के कला-कौशल के यथार्थ प्रयोगकर्ताओं के साथ जो आप का सहजीवन वा सहभाव (Co-existence) का सम्बन्ध है, उस से आप इनकार नहीं कर सकते।

५३

यदि आप नई रोशनी को जो आप ही के देश की पुरानी और प्राचीन रोशनी है, ग्रहण करने को राज़ी और तय्यार नहीं हो, तो जाओ और पितृलोक में पूर्व पुरुषों के साथ निवास करो। यहां ठहरने का कौन काम है? प्रणाम!

५४

"भारत ऐसा (ख़राब) हो गया है," इस विचार में समय नष्ट मत करो। अपनी जो अनन्त शक्ति है उसे संचय करो और दृढ़ता से निश्चय करो कि "भारत आगे ऐसा (उत्तम) होगा"!

५५

आज तो यह हाल है कि भारत वर्ष में स्वामी और पण्डित लोग अपने वंश की आलस्यशील निद्रा को बनाए रखने वाली लोरी गा रहे हैं।

५६

स्वतंत्रता पूर्वक विचार को भारत वर्ष में पाखण्ड, नहीं नहीं, घोरपाप समझा जाता है। जो कुछ (विचार) मृत-भाषा से आ रहा है, वही पवित्र (माना जाता) है।

५७

जो बालक ईसाई हो जाता है, वह अपने हिन्दू पिता का अपना हाड़ मांस होते हुए भी गली के कुत्ते से अधिक सम्बन्ध-रहित (अपरिचित) हो जाता है।

५८

सत्य का अध्यास शक्ति और विजय (सफलता) दिलाता है। देहाध्यास (चाहे वह ब्राह्मणत्वं का अध्यास अथवा संन्यासपने का अध्यास ही क्यों न हो) तुम्हें चमार बना देता है।

५९

सभ्य समाज में स्त्री को निर्जीव पदार्थ का दर्जा दिया हुआ है। जब कि पुरुष अपने मार्गों में स्वतंत्र है, स्त्री के हाथ पाँव जकड़े हुए होते हैं। वह कभी एक पुरुष की कभी दूसरे पुरुष की सम्पत्ति हो जाती है।

६०

यह सभ्य समाज के मुँह पर बड़ा कलंक है कि स्त्री को एक प्रकार का व्योपार का पदार्थ बना लिया है। और जिस प्रकार पेड़, घर, या धन मनुष्य की सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार स्त्री मनुष्य की सम्पत्ति और उस के अधिकार में है।

६१

स्त्रियों, बालकों और मज़दूरी-पेशा जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना उन्हीं शाखाओं को काट गिराना है कि जिन के हम आश्रय हैं। नहीं, नहीं, यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही नाशकारी कुठाराघात करना है।

६२

यह मत कहो कि विवाह और धर्म में विरोध है, वरन् जिस प्रकार आत्मानुभव का जिज्ञासु सच्चे परमानन्द, तत्व वस्तु और मूल तत्वों पर विचार करता है, उसी प्रकार (विवाहावस्था में) देखो कि आनन्द की शुद्ध अवस्था क्या है, और असली आत्मा क्या है

६३

ऐसे सब विवाह-सम्बन्ध, जो मुख के रंग, मुखाकृति, रूप व आकार अथवा शारीरिक सुन्दरता की आसक्ति से उत्पन्न होते हैं, वे अन्त में हानि-युक्त और बहुत आनन्द-रहित होते हैं।

६४

पति का उद्देश्य धन कमाना और पारिवारिक सम्बन्धों का दुप्रयोग करना नहीं बल्कि विवाह बन्धन की वास्तविक उन्नति करना होना चाहिये।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

(२) धर्म और सदाचार ।

१

किसी धर्म को इस लिए अंगीकार मत करो कि वह सब से प्राचीन है। इस का सब से प्राचीन होना इस के सच्चे होने का कोई प्रमाण नहीं है। कभी कभी पुराने से पुराने घरों को गिराना उचित होता है और पुराने वस्त्र अवश्य बदलने पड़ते हैं। यदि कोई नये से नया मार्ग वा रीति विवेक की कसौटी पर खरी उतरे, तो वह उस ताज़ह गुलाब के फूल के सदृश उत्तम है जिस पर कि चमकती हुई ओस के कण शोभायमान हो रहे हों।

२

किसी धर्म को इस लिए स्वीकार मत करो कि यह सब से नया है। सब से नई चीज़ें समय की कसौटी से न परखी जाने के कारण सर्वथा सर्व-श्रेष्ठ नहीं होतीं।

३

किसी धर्म को इस लिए मत स्वीकार करो कि उस पर विपुल जन संख्या का विश्वास है; क्योंकि विपुल जन संख्या का विश्वास तो वास्तव में शैतान अर्थात् अज्ञान के धर्म पर होता है। एक समय था कि जब विपुल जन-संख्या गुलामी की प्रथा को स्वीकार करती थी, परन्तु यह बात गुलामी की प्रथा के उचित होने का कोई प्रमाण नहीं हो सकती।

४

किसी धर्म पर इस लिए श्रद्धा मत करो कि उसे थोड़े

से गिने चुने लोगों ने माना हुआ है। कभी कभी अल्प जन-संख्या जो किसी धर्म को अंगीकार कर लेती है, (अज्ञान के) अंधेरे में भ्रान्त-बुद्धि होती है।

५

किसी धर्म को इस लिए अंगीकार मत करो कि वह किसी त्यागी द्वारा अर्थात् ऐसे मनुष्य द्वारा प्राप्त हुआ है कि जिस ने सब कुछ त्यागा हुआ है। क्योंकि हमारी दृष्टि में कई ऐसे त्यागी आते हैं कि जिन्हों ने सब कुछ त्यागा होता है, पर जानते भी कुछ नहीं हैं; और यथार्थ रूप से वे धर्मोन्मादी होते हैं।

६

किसी धर्म को इस लिए अंगीकार मत करो कि यह युवराजों और भूपतियों द्वारा प्राप्त हुआ है। राजा लोगों में प्रायः आध्यात्मिक धन का पूरा अभाव रहता है।

७

किसी धर्म को इस लिए अंगीकार मत करो कि वह ऐसे मनुष्य का चलाया हुआ है कि जिस का चरित्र परम श्रेष्ठ है। अनेकशः परम श्रेष्ठ चरित्र के लोग तत्व का निरूपण करने में असफल रहे हैं। हो सकता है कि किसी मनुष्य की पाचन शक्ति असाधारण रूप से प्रबल हो, तो भी उसे पाचन क्रिया का कुछ भी ज्ञान न हो। यह एक चित्र-कार है जो कला चातुर्य्य का एक मनोहर, उत्कृष्ट और अत्युत्तम नमूना दिखलाता है; परन्तु वही चित्रकार शायद संसार भर में अत्यन्त कुरूप हो। ऐसे भी लोग हैं जो अत्यन्त कुरूप होते हैं पर तो भी वे सुन्दर तत्वों का निरूपण करते हैं। सुक़रात इसी प्रकार का मनुष्य था।

८

किसी धर्म पर इस कारण श्रद्धा मत करो कि यह किसी बड़े प्रसिद्ध मनुष्य का चलाया हुआ है । सर आईज़क न्यूटन एक बहुत प्रसिद्ध मनुष्य है तो भी उस की प्रकाश-सम्बन्धी निर्गम मीमांसा (emissary theory of light) असत्य है !

९

जिस किसी चीज़ को स्वीकार करो या जिस किसी धर्म पर विश्वास करो, तो उस की निजी श्रेष्ठता के कारण से करो। उस की स्वयं आप जाँच पड़ताल करो । खूब छानवीन करो।

१०

अपनी स्वतन्त्रता को बुद्ध, ईसा मसीह, मोहम्मद या कृष्ण के हाथों न बेच डालो।

११

जब तक आप स्वयं अपने अन्तरगत अंधकार को दूर करने के लिए उद्यत नहीं होते, तब तक संसार में चाहे तीन सौ तेंतीस अरब ईसा मसीह आजावें, तो भी कोई भला नहीं हो सकता। दूसरों के आश्रय मत रहो।

१२

सब धर्मों का लक्ष्य 'अपने ऊपर से पर्दे का हटाना' अर्थात अपने आप का स्पष्ट निरूपण करना है।

१३

सत्य धर्म का मतलब ईश्वर शब्द पर विश्वास की अपेक्षा भलाई पर विश्वास करना है।

१४

स्मरण रहे कि धर्म हृदय-संबन्धी वस्तु है, पुण्य

(शील) भी हृदय-संबन्धी वस्तु है; इसी प्रकार पाप भी। पाप और पुण्य की स्थिति नितान्त आप के चित्त की स्थिति और दशा के अधार पर होती है।

१५

धर्म, जैसा कि अध्यात्म-विद्या से विलक्षण (विभिन्न) और साथ ही मत मतान्तरों के चिन्हों से पृथक है, वास्तव में एक ऐसा गूढ़ मार्ग (क्रिया) है कि जिस से मन या बुद्धि पीछे लौटती है और अपने आप को उस सर्वोपरि (परमात्मा) अर्थात् अगाध स्रोत (आदि कारण) में खो देती है।

१६

Religion [धर्म, जैसा कि शब्द की उत्पत्ति से स्पष्ट है = re (री) वापिस, पीछे या आधार + ligare (लिजारी) बान्धना मिलाना] वह वस्तु है जो किसी (मनुष्य) को उसके मूल या आदि स्रोतके साथ पुनः बान्धती या मेल दिलाती है।

१७

कोई भी मत या धर्म (सम्प्रदाय), जो आज कल की वैज्ञानिक अन्वेषणा के नीरोग और शिष्ट परिणामों के साथ मेल नहीं खाता, उसे किञ्चित अधिकार नहीं है कि वह अपने मूर्ख भक्तों (अनुयायियों) पर ज़बरदस्ती करे वा उन्हें अपना शिकार बनावे।

१८

इस समाज अथवा उस समाज में सम्मिलित होने, इस ईसा मसीह अथवा उस कृष्ण की उपासना करने, यह पाखण्ड (टोटका) अथवा वह पाखंड करने की समस्त क्रियाओं से कोई लाभ नहीं होगा।

१९

थोड़े वा बहुत अन्ध-विश्वास की छाप संसार भर के सब मत-मतान्तर की अध्यात्म-विद्याओं के मुँह पर लगी हुई है।

२०

जो परदा हमारी आँखों पर पड़ा हुआ है, उसी को फाड़ डालने के प्रयत्न मात्र ही ये सब धर्म हैं।

२१

धर्मों, मतों और संज्ञाओं (नामों) को लोग केवल गले के तावीज़ों की तरह धारण करते हैं। उन में सब प्रकार के गुण और प्रभाव बतलाए जाते हैं, परन्तु फिर भी जो कुछ थोड़ा सा लाभ हम को प्राप्त होता है वह इन प्यारे स्वप्नों से नितान्त स्वतंत्र होकर होता है।

२२

जब तक बाह्य कर्तव्य और "तू यह कर" और "तू यह न कर" इस प्रकार की विधि-निषेध-युक्त-आज्ञाओं का कोई लेशमात्र भी रहेगा, तब तक सच्ची पवित्रता की आध्यात्मिक उन्नति के लिए कोई गुंजायश नहीं हो सकती।

२३

Imperative Mood (आज्ञा-सूचक क्रिया), Second Person (मध्यम पुरुष) अर्थात् मध्यम पुरुष प्रति आज्ञा देने की क्रिया हमारे अन्दर परिच्छिन्न व्यक्तित्व को जीवित रखती है; और जहां कहीं परिच्छिन्नता है, वहां परमानन्द नहीं होता, वहां न राग द्वेष से छुटकारा मिलता है, न मोह और घृणा से मुक्ति मिलती है, और न अस्थिरता और लोभ से छुट्टी मिलती है।

२४

निर्दोष लड़के और लड़कियों पर धार्मिक विश्वास ज़बरन् मँढने से आध्यात्मिक दरिद्रता आजाती है।

२५

आध्यात्मिक दरिद्रता और धार्मिक असहिष्णुता (या उन्मत्ता) यथाक्रम उसी एक ही रोग की क्रियावान और निष्क्रिय अवस्थाएं हैं।

२६

व्यक्ति, रूप, मान, पद, धन, विद्या और आकार का सत्कार करना मूर्ति-पूजन है।

२७

वह रसोईघरवाला धर्म जो अपरिमित और अमर आत्मा को वाहरवालों के शोरवे से विगड़ने देता है, सचमुच ही निन्दनीय है।

२८

ऐ अस्थिर, चंचल और संदिग्ध चित्त! इस उत्साहहीन धर्मपरायणता वा विधर्म परायणता की कोई ज़रूरत नहीं। तू इन सब संशयों और संदेहों को झुलसा डाल (वा जला डाल)। ये सब मत-मतान्तर (doxies) तेरी अपनी रचना हैं।

२९

तुम्हें अपने आप को ईश्वर, ईसा, मोहम्मद, बुद्ध, कृष्ण अथवा संसार के अन्य किसी ऋषि के अधीन क्यों समझना चाहिये? आप सब के सब स्वाधीन हो।

३०

राम आप को ऐसा धर्म बतलाता है जो राह में (गली में) पड़ा हुआ मिलता है; जो (वृक्ष की) पत्तियों

पर लिखा हुआ है; जिस को नदियां गुनगुनाती हैं; जिसको पवन धीरे २ से सुनाती है; जो आप की ही नसों और नाड़ियों में फड़क रहा है; ऐसा धर्म, जिस का तुम्हारे व्यापार और हृदय से सम्बन्ध है; ऐसा धर्म, जिसे आपको किसी विशेष मन्दिर में जाकर व्यवहार में नहीं लाना पड़ता; ऐसा धर्म, जिस के अनुसार आप को अपना जीवन व्यतीत करना होगा, और जिस को अपने जीवन में बर्तना होगा। जिस का तुम्हारे चूल्हे से और पाकशाला से सम्बन्ध है। जिस धर्म के अनुसार सर्वत्र ही आपको अपना जीवन व्यतीत करना होगा।

३१

वेदान्त शब्द का अर्थ केवल परम तत्व है। वह तत्व (सत्य) तुम्हारी निजी वस्तु है, तुम्हारे से अधिक वह तत्व राम का नहीं है, तुम्हारे से अधिक वह हिन्दुओं का नहीं है। वह तत्व किसी एक की सम्पति नहीं है; परन्तु प्रत्येक वस्तु उस तत्व की है।

३२

सफलता का रहस्य वेदान्त को व्यवहार में लाना है। व्यावहारिक वेदान्त ही सफलता की कुञ्जी है।

३३

वेदान्त कहता है कि "ओ ईसाईयों ! मुसलमानों ! वैष्णवों ! और संसार भर के भिन्न २ मतावलम्बियों ! यदि आप समझते हो कि आप की मुक्ति ईसा, बुद्ध, कृष्ण अथवा किसी अन्य बड़े तपस्वी के नाम से हो गई है, तो यह स्मरण रहे कि वास्तविक शक्ति वा सामर्थ्य ईसा अथवा बुद्ध, कृष्ण अथवा किसी अन्य व्यक्तिमें नहीं धरा है, (वरन्), वह असली गुण आप की अपनी आत्मा में ही है।

३४

वेदान्त कहता है "कि इस व्यक्ति या उस व्यक्ति की भावना की अपेक्षा सत्य का अधिक सत्कार करो; क्योंकि यदि आप सत्य की क़दर करोगे, तो (यह) यथार्थ में अपने मित्र की सच्ची क़द्रदानी होगी।

३५

मांस के विषय में वेदान्त कहता है "कि अपने शरीरों की ममता मत रक्खो; शरीर मरता है कि जीता है इस का ख्याल छोड़ दो। लोग तुम्हारे शरीर को पूजते हैं या उस पर पत्थर मारते हैं, इस की परवा मत करो। इन सब से ऊपर उठो।

३६

वेदान्त कहता है "क़ायदा यह है कि जिस हद तक आप अपनी निजी मूर्ति अर्थात् देह को सच्चा समझते हैं, उसी हद तक आप अन्य मूर्तियों को भी सच्चा समझ सकते हैं। यही नियम (विधान) है।

३७

आप किसी चित्र को उसी चित्र के कारण ही प्यार करने लग जाते हो, और जिस मनुष्य का वह चित्र है, उसको भुला देते हो। क्या तुम्हारा यह काम मूर्ति पूजन नहीं है।

३८

मूर्तिपूजा क्या है? अपने मित्रों और शत्रुओं को इस हद तक व्यक्तित्व, पृथकत्व और वास्तविकता का भाव प्रदान कर देना कि जिस से वह मूर्तिमान (वेष बदली हुई) व्यक्ति ही भूल से निरवयव आत्मा या दैवी-विधान मान ली जाए।

३९

हिन्दुओं के सिद्धान्तानुसार हर एक व्यक्ति ईश्वर है, और सर्वोत्तम बहुमुल्य रत्न, समस्त भण्डार, परम आनन्द तथा सब प्रकार के सुखों का स्रोत उसी के अन्तर्गत है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है, और वही स्वयं यह सब कुछ (नाम रूप) है।

४०

उपनिषदों और विख्यात (तेजस्वी) वेदान्त की उत्कृष्ट शिक्षाओं का स्थान एक प्रकार के रसोई घर के धर्म को (अर्थात् भोजन और भोजन करने की विधि की बे तरह परवा करने को) दिया गया है।

४१

सच्चा वेदान्त केवल वेदों तक ही परिमित नहीं है, वह आप के हृदयों में है। ......राम को इस मत वा उस मत का दास मत समझो। राम तो आप का अपना आप है। स्वाधीनता स्वरूप है।

४२

ब्रह्म-विद्या से किसी को भी वंचित रखने का क्या काम। अज्ञान और निर्बलता के बन्द कमरों और तहखानों को गिरा दो। दिव्य प्रकाश और वायु से सब का कल्याण होने दो।

४३

वेदान्त आप की कामनाओं को छीन कर आप को दुखी नहीं बनाता, किन्तु वेदान्त आप से इन इच्छाओं का समाधान कराता है और इन्हें आप के अधीन करता है। उन (इच्छाओं) से क्रूरता-पूर्वक शासित (दास) होने के स्थान

पर वेदान्त आप को उन का शासक (प्रभु) बनाना चाहता है।

४४

उपवास (fasting) तो केवल सहायतार्थ कियाजाना चाहिए, परन्तु उस का हम पर अधिपत्य न होना चाहिये। लोग प्रायः उपवास इस लिए करते हैं, कि वे उस के लिए विवश किए जाते हैं। उस समय वे (लोग) उपवास रूपी दासता के दास बन जाते हैं।

४५

असली उपवास का अर्थ अपने को सारी स्वार्थयुक्त कामनाओं से रहित कर देना और उन से पूर्णतयः शुद्ध हो जाना है; उनको पोषण करना नहीं है।

४६

दान (के उचित अनुचित होने) का निर्णय (दान करने वाले के) अभिप्राय से नहीं बरन (दान) के फल से किया जाना चाहिये।

४७

यदि हम एक दिन हज़ारों भूखों को भी भोजन करादें तो (उस से) क्या (लाभ) ? इस प्रकार का विवेकहीन दान भले मानुष दरिद्रों के उत्पन्न करने में सहायता देता है।

४८

"यज्ञ वा होम से विपत्ति टलती है" यह कहावत आज भी उतनी ही सच्ची है जितनी कि प्राचीन पुण्य-काल में थी, किन्तु (भेद केवल इतना है कि) यह यज्ञ केवल निर्दोष जीवों का नहीं बल्कि प्रेमकी वेदीपर अपनी दल-बन्दी

की वृत्ति अर्थात् जाती-भेद, तथा ईर्षा के भावों का हवन करना है जो हमें इसी संसार में स्वर्ग ला देता है।

४६

हवन के लिए कृत्रम-अग्नि जलाने की जगह शुद्ध-चित्त युवकों को प्रातःकाल अथवा सायंकाल के सूर्य की प्रदीप्त प्रभा को यज्ञाग्नि कुण्ड बनाकर उस में अपने तुच्छ और ठिंगने अहंकार की आहूति देना चाहिये।

५०

देवताओं के लिए सच्चे यज्ञ व हवन का अर्थ व्यक्तिगत शक्तियों और इन्द्रयों का उन के प्रतिरूप आधिदैविक शक्तियों के प्रति अर्पण कर देना है।

५१

आदित्य के प्रति आहूति देने का अर्थ सारी आँखों का आदर तथा सम्मान करते हुए समस्त आँखों में ईश्वर की प्रत्यक्षता का अनुभव करना होगा।

५२

इन्द्र के प्रति आहूति का अर्थ, देश भर में सब हाथों अर्थात् लोगों के कल्याणार्थ काम करना होगा।

५३

यदि आप मनुष्य की पूजा करें, दूसरे शब्दों में यदि आप मनुष्य को मनुष्य नहीं ईश्वर रूप मानें, यदि आप सब चीज़ों को ईश्वर-रूप अर्थात् परमात्मा रूप समझें और तब मनुष्य की उपासना करें, तो यह तुम्हारी ईश्वर की उपासना होगी।

५४

इस संसार में प्रत्येक वस्तु परिवर्तन-शील है। देश का रूप क़रीब २ बदल गया; शासन बदल गया, भाषा बदल गई,

देश-वासियों का रंग बदल गया, तो फिर वेदों के समय के देवता लोग ही अभी तक दूर स्वर्ग में अपने २ पालनों में क्यों झूलते रहें, और काल के साथ वे भी क्यों न आगे बढ़ें और इस पृथ्वी पर आकर हम लोगों से वे क्यों खुल्लम खुल्ला न मिलें और इस प्रकार वे क्यों न मनुष्य से परिचित हों ?

५५

दशा (स्थिति) अब बदल गई; अधिकतर लोग एक-राज-शासन (एक राजाधिपत्य) नहीं चाहते, वे स्वराज चाहते हैं। ईश्वर के पुराने, गर्वित और उद्धत भाव को 'अहं ब्रह्मास्मि' के स्वतंत्रता-प्रेरक भाव में विस्तृत करने का उत्तम समय है।

५६

वर्तमान कर्मकाण्ड के प्रश्न का रूप बदल कर अब यह हो गया है; "यदि आप को वर्तमान उन्नति की तथा कला कौशल वाली वृद्धि की शताब्दी में रहना है और राजनैतिक तपेदिक़ से अंश २ करके नष्ट होना नहीं है, तो विद्युत के मातरिश्वा को बांध लो, भाप के वरुण को दास बना लो और कृषि-विज्ञान के कुवेर से परिचित हो जाओ। इन देवताओं से तुम्हारा परिचय कराने वाला पुरोहित वह वैज्ञानिक अथवा कला वेत्ता (artist, कारीगर) है जो विद्या के इन अङ्गों में शिक्षा देता है।

५७

ओ तुम जो सत्य पर आरूढ़ हो, इस बात से भयभीत मत हो कि अधिकांश लोग मेरे विरुद्ध हैं।

५८

जिस समय सब लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे, तब यह तुम्हारे लिए अति दुःख या कष्ट का कारण होगी, क्योंकि इसी प्रकार इन (वर्तमान लोगों) के पूर्वजों ने झूठे पैग़म्बरों की प्रशंसा की थी।

५६

ओ थोड़ी श्रद्धा वाले लोगों! जागो अपने पवित्र प्रभुत्व में जागो। तुम्हारे ला परवाही के केवल एक कटाक्ष से ही तुम्हारी प्रभुत्व पूर्ण लापरवाही के एक इशारे से ही घोर नरक भी मनोहर स्वर्ग में परिणित हो सकता है।

६०

अपने हृदय (छाती) में विश्वास (श्रद्धा) की अग्नि को प्रज्वलित रखे और ज्ञान की मशाल को रोशन रखे बिना आप कोई भी काम पूरा नहीं कर सकते और एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकते।

६१

अन्य पतितों का उद्धार करते फिरने वाले प्यारे! आप कौन हैं? क्या स्वयं आप का उद्धार हो चुका है?

६२

कर्म—उपसना से मुक्ति लाभ करने का विश्वास व्यर्थ है।

६३

तुम अपने भीतर के स्वर्ग में जो तुम स्वयं हो निवास करो और फिर सब वस्तुएँ स्वतः आप के पास जमा होएँगी।

६४

अपनी सच्ची आत्मा के ईसा को अर्थात् प्रभुओं के

प्रभु को, इस संसार के भ्रान्त करने वाले सुखों के बदले में मत बेचो।

६५

यदि उस झूठे चुम्बन के बाद तत्काल ऐसा वाक्य न होता, तो आज ईसा को कौन स्मरण रखता?

६६

यदि आप चाहो तो ईसा आज उत्पन्न किया जा सकता है।

६७

यदि बाइबल के ईश्वर ने एक वृक्ष विशेष को निषेध करके विभिन्न न किया होता, तो बेचारे हज़रत आदम को अदन के शोभायमान विशाल बाग में एक स्थान में उस वृक्ष विशेष के फल को खाने का ख्याल तक कभी न होता।

६८

जब तक पति पत्नियां एक दूसरे के परस्पर उद्धारक अर्थात् ईसा बनना अङ्गीकार न करें, तब तक संसार भर की इंजीलें भी कुछ लाभ नहीं कर सकतीं।

६९

हज़रत मूसा के प्रथम नियम का अर्थ यह है कि प्रेम के अतिरिक्त तेरा कोई दूसरा ईश्वर नहीं होगा।

७०

केवल परमात्मा ही सत्य वस्तु है; अन्य सब मिथ्या है। ला इलाह इल लिल्लाह।

७१

प्रार्थना का अर्थ कुछ शब्दों का रटना नहीं है। प्रार्थना का अर्थ परमात्मदेव का मान करना, अनुभव करना है।

७२

"प्रभू ! तेरी इच्छा पूर्ण हो" ऐसी प्रार्थना के स्थान पर तुम्हें इस प्रकार आनन्दित होना चाहिये कि "मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है; मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है।"

७३

दूसरों की राय से समोहित मत हो; जो पुरुष दूसरों की रायों से समोहित होने की निर्बलता से जितना अधिक ऊपर रहता है, उतना ही वह अधिक स्वतन्त्र रहता है।

७४

जैसा कि नियम है, ये गिरजे, मन्दिर, सभाएँ और सम्मेलन, संसार की संमोहन निद्रा को जारी रखने के भिन्न २ तरीके हैं।

७५

क्या प्रमाण (शास्त्र) सत्य का प्रतिपादन वा स्थिर कर सकता है? क्या सूर्य के स्पष्ट दर्शन के लिए छोटे से दीपक की ज़रूरत होती है? यदि ईसा, मोहम्मद, बुद्ध, ज़ोरास्टर, वेद आदि सब मिल कर गणित के किसी साधारण तथ्य की (सत्यता विषय) साक्षी दें, तो क्या उस साधारण तथ्य का महत्व किंचित मात्र भी बढ़ जावेगा।

७६

ओ जीवित मनुष्य ! स्वयं प्रेम रूप बन कर जीवन व्यतीत करना उत्तम है। बुद्ध, ईसा स्वामियों और भूतकाल के अन्य उपास्य मूर्तियों के अधूरे चरित्रों (दृष्टान्तों) को देख कर भ्रम में मत पड़ो (अपनी बुद्धि पर परदा मत डालो)।

७७

बीसवी शताब्दी में यह हमारे लिए उत्तम समय है कि हम विवेक के भाव में जागें और व्यक्तियों को उन के उपदेशों के साथ मिश्रित न करें। क्या हम को सुन्दर कमल का फूल इसलिए त्याग देना चाहिये कि वह एक गन्दे तालाब में उत्पन्न होता है।

७८

किसी मनुष्य की शिक्षा और उपदेशों को, शिक्षक की व्यक्ति को ध्यान में न रख कर, हमने उन्हें उन (शिक्षा और उपदेशों) के गुणों पर लेना अर्थात् ग्रहण करना है। रेखा-गणित के तत्वों का यूक्लिड (अंग्रेज़ी रेखा-गणित निर्माता) की व्यक्ति के साथ भला क्या संबन्ध है?

७६

बंधन और दासत्व शीघ्र दूर हो रहे हैं, विकास का क्रम जारी है और इस कारण प्रत्येक वस्तु को अवश्य आगे बढ़ कर उन्नति पर उन्नति करना है। तो क्या आप का व्यक्तिगत परमात्मा ही (वहीं का वहीं) ठहरा रहेगा (अर्थात उन्नति नहीं करेगा)? नहीं।

८०

देहात्मवाद (Materialism) ईश्वराविश्वास-वाद (Scepticism), प्रत्यक्षैकात्मक-दर्शन वाद (Positivism) नास्तिकवाद(Atheism) और अज्ञेयतावाद(Agnosticism) के कट्टर पक्षपातियों तक को जो सफलता प्राप्त होती है, उस का कारण भी अज्ञाततः उन के अन्तर्गत धर्म का प्रत्यक्ष भाव है।

८१

संसार स्वयं एक कौतुक है, अन्य कौतिकों की आवश्यकता नहीं, भय जो सब पापों का मूल है, केवल आत्मा के ज्ञान से दूर होता है। शुद्धता का अनुभव करो और स्वयं शुद्ध बनो। किसी अन्य धर्म की शिक्षा देना अस्वाभाविक है।

८२

दूसरों को अपना जीवन व्यतीत करने देना और वस्त्र, भोजन, गमन, शयन, हंसी रुदन और वार्तालाप का तो भला कहना ही क्या है, इन सब में स्वतन्त्रता रखना, क्या यह वास्तव में अकर्मण्यता (जड़ता) नहीं है ?

८३

हम दूसरों की दृष्टि में बड़े भले बनना चाहते हैं, यही (हमारी अभिलाषा) समाज की बुराई है और सब धर्मों के लिए विष है।

८४

प्रत्येक स्मृति यह कहने के लिए मौजूद है "कि कल हम ने उस पदार्थ को इस प्रकार माना था, आज आप का अनुभव इस वस्तु के सम्बन्ध में क्या है।

८५

जब तक कोई धार्मिक ग्रन्थ लोगों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति न करे, तब तक वह ठहर नहीं सकता, और जैसे २ विकास के मार्ग पर लोग उन्नति करते हैं, वैसे वैसे उन के धार्मिक ग्रन्थों की व्याख्या में भी उन्नति अवश्य होती है।

८६

भूत काल के महा-पूज्य ऋषियों और मुनियों की आँखों से झांकते रहने की अपेक्षा हमें अपनी ही आँखो द्वारा देखना और अपनी समस्याओंका स्वयं ही हल करना है।

८७

प्रकृति में परमात्मा को प्रकृति रूप से देखो, वल्कि उस से भी बढ़ कर तुम उसे (रसायन) की प्रयोग शाला और विज्ञान-भवन में देखो, तुम्हारे लिए रसायनज्ञ की मेज़ यज्ञाग्नि के समान पवित्र होनी चाहिये।

८८

आप के भीतर के निजात्मा से यदि वाह्य प्रकृति का शासक आत्मा भिन्न होता, तो आप के लिए सिर नीचे लटकाने और धिक्कारे जाने से अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न होता।

८९

अस्त होते या उदय होते सूर्य्य की ओर जाइये, नदियों के तट पर विचरिये, अथवा ऐसी जगह पर टहलिये जहां शीतल वायु अठखेलियां करती हो, तब आप अपने को प्रकृति के साथ एक ताल तथा विश्व के साथ एक स्वर (अविरोध) पायेंगे।

९०

वे लोग धन्य हैं जो समाचार-पत्र नहीं पढ़ते, क्योंकि (ऐसा करने से) उन को ठीक प्रकृति, के दर्शन होंगे, और प्रकृति के द्वारा ठीक परमात्मा के दर्शन होंगे।

६१

हमारे भोजन (अन्न) का निर्देशक (guide) ज्ञान हो।

६२

समग्र संसारों के धर्म्म-ग्रन्थों को उसी भाव से ग्रहण करना चाहिये, जिस प्रकार रसायन शास्त्र का हम अध्ययन करते हैं, अपने तजुर्बे के अनुसार अन्तिम निश्चय तै पाते हैं।

६३

विज्ञान को सर्व प्रिय बनाने के उद्योग का अभिप्राय यह है, कि कुछ स्पष्ट धार्मिक भूलों का मूलोच्छेद किया जाय और लोगों की शक्तियों को अधिक साधारण तथा विवेक युक्त मार्ग में लगाया जाय।

६४

भूत काल को वर्तमान से गठाने के लिए वैज्ञानिक अविष्कारों को ईसाईयों की इंजील अथवा अन्य धार्मिक ग्रन्थों (भाष्य आदि) के आदेशों के साथ क्या टांका जा सकता है?

६५

यदि विज्ञान पवित्र शब्द ॐ के प्रभाव सम्बन्धी मन्यता का विरोध करे तो उस के लिए शोक है। यदि पवित्र ओंकार के प्रभाव सम्बन्धी सत्य के विरुद्ध विज्ञान चलता है तो उसे धिक्कार है।

६६

वेद विज्ञान से विरुद्ध नहीं हैं; आप के आजकल की रचनाएँ और अविष्कार: श्रुतियों की महारानी के चरण धो रहे हैं। वे वेदान्त की अधिकाधिक सेवा कर रहे हैं।

९७

शौच के समय मनुष्य को कितनी कुल्ली करना चाहिये। इस प्रकार के पेचीदा प्रश्नों पर वाद-विवाद करने में बहुत सारे युवकों की मानसिक शक्तियां अपव्यय अथवा नष्ट की जाती हैं।

९८

आप अपनी शक्ति को उत्तम विषयों की ओर लगने दीजिए, तब आपके पास कामुकता की गंध (रस) तक के ख़्याल करने का भी समय न मिलेगा!

९९

प्रायः यह उपदेश दिया जाता है कि सांसारिक प्रेम से धर्म का किंचित सम्बन्ध नहीं है, राम आप से कहता है कि इनका सम्बन्ध है। प्रेम का उचित प्रयोग आप को ईश्वर का अनुभव करा देता है।

१००

जब तक पत्नि पति का वास्तविक हित करने को तत्पर नहीं होगी और पति पत्नि की कुशल-क्षेम की वृद्धि के लिए उद्यत न होगा, तब तक धर्म की उन्नति नहीं हो सकती; फिर धर्म के लिए कोई आशा नहीं है।

१०१

इन्द्रिय-सुख यदि ठीक ठीक कहा जाय तो अपने स्वरूप से वह धर्म है; परन्तु धर्म के अनुभव करने का इन द्वारा जो मार्ग है वह गंदी मोरी के सींकचों से दरबार की झांकी लेने के समान है।

१०२

देवतागण हमारे त्याग (प्रदान) और विनय पर अपने दिल ही दिल में हँसते हैं। हा! ये कैसी उपहास युक्त झूठी

शपथें हैं जो हम अपने दूर के पड़ोसी के प्रति सच्चा बने रहने के यत्न में लेते हैं।

१०३

भय से और दण्ड से पाप कभी बंद नहीं हुए।

१०४

अपराधों के अनेक नाम होते हैं, मातृ-हत्या (मैट्रीसाइड matricide), नर-हत्या (Homicide होमी-साइड) इत्यादि, परन्तु प्रत्येक और सब में ईश्वर को अनुभव न करके आप ईश्वर-अथवा देव-हत्या का अपराध करते हो।

१०५

आदेशों के देने से सदाचार की कमी नयूनता उत्पन्न कर दी जाती है।

१०६

संसार ख्याल करता है, अधिकतर धर्म भी मानते हैं, और बहुत से नीतिज्ञ (सदाचार उपदेशक) इस बात का स्पष्ट समर्थन करते हैं कि "आदेशों और नियमों से सब मामले तय हो जायेंगे"; परन्तु ऐसा कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं हो सकता।

१०७

जिस प्रकार मोह (आसक्ति) का नाम प्रेम हो जाता है, उसी प्रकार कभी कभी नैतिक दुर्बलता को लोग शुद्धता कह देते हैं (समझ लेते हैं)।

१०८

हृदय की शुद्धता का अर्थ केवल वैवाहिक (प्रणय सम्बन्धी) पापों से ही बचा रहना नहीं है। इस का अर्थ यह भी है और इस के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है।

१०९

आप का आत्मा, स्वभाव से ही अशुद्ध और पापी नहीं है, और न किसी एक मनुष्य के पाप से पतित हुआ है, और न अपने उद्धार के लिए वह किसी दूसरे मनुष्य के पुण्य के आश्रय ही है।

११०

लोग चाहे आप से भिन्नमत हों, चाहे आप पर नाना प्रकार की कठिनाईयां डालें, चाहे आप को बदनाम करें, पर उनकी कृपा तथा कोप, उन की धमकियों तथा प्रतिज्ञाओं के होते हुए भी आप के मन रूपी सरोवर से दिव्य, अनन्त रूप से पवित्र, मीठे (ताज़ा) जल की धारा के अतिरिक्त और कुछ निकलना ही नहीं चाहिये। आप के अन्दर से अमृत का प्रवाह बहना चाहिये, जिस से आप के लिये बुरी बातों का सोचना उसी प्रकार असम्भव हो जाय, कि जिस प्रकार स्रोत के शुद्ध और ताज़ा जल के लिए अपने पीनेवालों को विष दे देना असम्भव हो जाता है।

१११

यह एक दैवी-विधान है जिस को सब कोनों में तथा सब बाज़ारों में प्रसिद्ध कर देना चाहिये, कि "आप ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न करो, तो आप स्वयं अन्धे हो जाओगे।"

११२

चाहे आप किसी अत्यन्त एकान्त गुफा में कोई पाप कर लो, आप बिना किसी विलम्ब के यह देख कर चकित होंगे कि आप के पैरों नीचे की घास खड़ी हो कर आप के विरुद्ध साक्षी देती है, आप बिना किसी विलम्ब के देखेंगे

कि उन्हा दीवारों और उन्हीं वृक्षों के ज़ुबान हैं और वे बोलते हैं। आप प्रकृति को, कुद्‌रत को, धोखा नहीं दे सकते। यह एक सत्य है और यह एक दैवी-विधान है।

११३

गुरुत्वाकृष्ण शक्ति (gravity) से विरोध मत करो, संभल कर डग धरो, आप कभी न गिरोगे। आप का सारा गिरना, आप की सारी हानियाँ, और आप की सारी चोटें, आप के सारे दुख और चिन्ताएं, आप की किसी अन्दरूनी दुर्बलता के कारण हैं। उस (दुर्बलता) को दूर करो।

११४

जितना अधिक आप का हृदय प्रकृति के साथ एक ताल होकर धड़कता है, उतना ही अधिक आप को भान होता है कि समस्त प्रकृति भर में आप ही हैं जो सांस ले रहे हैं।

११५

दूसरों के प्रति आप का क्या कर्तव्य है? जब और लोग बीमार पड़ें तो उन को अपने पास ले आओ और जिस प्रकार अपने शरीर-विशेष के घावों की आप शुश्रुषा करते हैं, उसी प्रकार उन घावों को अपना ही समझकर आप उन की टहल करो।

११६

जब आप कुछ भान (महसूस) करने लगते हैं, तो आप के पड़ोसी पर तत्त्क्षण असर पड़ता है।

११७

वह मनुष्य जो अपने संगी से घृणा करता है, वह उसी मनुष्य के समान हत्यारा है कि जिस ने यथार्थ में हत्या की हो।

११८

जिस समय आप अपने को अपने संगी मनुष्य से अभिन्न नहीं समझते, उस समय मानो आप से परम पवित्र सत्य का खण्डन हो जाता है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(३) दर्शन शास्त्र ।

१

जो दर्शन-शास्त्र प्रकृति (कुदरत) में होने वाले सब तथ्यों का समाधान नहीं करता, वह दर्शन-शास्त्र ही नहीं है ।

२

सत्य क्या है ? तत्वमसि अथवा प्रेम स्वयं ।

३

सत्य को परस्पर समझौता करने की आवश्यकता नहीं। सारा संसार सूर्य के चारों ओर परिक्रमा किया करे, परन्तु सूर्य को संसार के चारों ओर परिक्रमा करने की आवश्यकता नहीं ।

४

सत्य किसी व्यक्ति विशेष की सम्पति नहीं है; सत्य ईसा की जागीर नहीं है; हम ने ईसा के नाम से सत्य का प्रचार करना नहीं है................ । यह सत्य कृष्ण अथवा किसी भी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है । बल्कि यह (सत्य) प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति है ।

५

सत्य को, जिस का कल भी वही रूप था, आज भी वही रूप है, और सदा वही रुप रहेगा, किसी घटना विशेष के साथ गड़बड़ मत करो ।

६

सत्य का अनुभव करना विश्व का स्वामी हो जाना है ।

७

इस लिए कि आप सत्य तक पहुंच सकें, वा आप आत्मानुभव कर सकें, यह ज़रूरी है कि आप की प्रियतम अभिलाषाएँ और आवश्यकताएँ सारी की सारी नितान्त भिद (छिद) जाएँ, आप की ज़रूरतें और प्रियतम ममताएँ (आसक्तियां) आप से अलग २ हो जाएँ और आप के प्रिय अन्ध विश्वास मलिया-मेट हो जाएँ; वे आप के शरीर से नितान्त अलग २ होकर दूर गिर जाएँ।

८

यदि सत्य के लिए आप को अपना शरीर त्यागना पड़े तो त्याग दीजिए। यही अन्तिम है। यही अन्तिम ममता है जो भंग होती है।

६

यह सत्य अथवा ईश्वर आप को अपना पितावत् भान हो, यह सत्य या ईश्वर आप को अपनी माता रूप भान हो, यह सत्य या ईश्वर आप को अपनी स्त्री स्वरूप हो, यह आप को अपना पितामह, गुरू, घर, सम्पत्ति, प्रत्येक वस्तु भान हो।

१०

सत्य का सच्चा भाव सारे संसार तथा समस्त विश्व के विरुद्ध व्यक्ति की प्रधानता स्थापित करना है।

११

अपनी मृत्यु पश्चात् आप का नर्क को जाना अथवा स्वर्ग में समावेश होना ही पूरा तत्व (सत्य) नहीं है।

१२

सम्पूर्ण मनुष्य हमें कितना ही थोड़ा मिलता है। सम्पूर्ण मनुष्य वह है जो ईश्वरबोधित (ईश्वर-संचारित inspired) हो, सम्पूर्ण मनुष्य सत्य स्वरूप है,...... आप सम्पूर्ण बनो,

कामनाओं और मोह के बन्धनों से रहित हो। इस राग और द्वेष से परे हो।

१३

असल में केवल एक ही आत्मा है, जो हम हैं, इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और इस आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी न होने के कारण आप बिना झिजक (या लगातार) यह नहीं कह सकते कि आप एक अंश हैं। परन्तु इस से यह सिद्ध होना अनिवार्य है कि आप ही वह सम्पूर्ण आत्मा हो। सत्य (तत्व) के भाग नहीं हो सकते। अब आप ही सत्य हैं।

१४

लोग तथा अन्य वस्तुएँ तभी तक हमें प्यारी लगती हैं, जब तक वह हमारा स्वार्थ सिद्ध करती हैं तथा हमारा काम निकालती हैं। जिस क्षण हमारे स्वार्थ के सिद्ध होने में जोखिम (भय) होती है, उसी क्षण हम सब कुछ त्याग देते हैं।

१५

बच्चे के लिए बच्चा प्यारा नहीं होता, किन्तु अपने लिए वह प्यारा होता है। पत्नी के लिये पत्नी प्यारी नहीं होती, किन्तु अपने लिए पत्नी प्यारी होती है। ऐसे ही पति के लिए पति प्यारा नहीं होता, बल्कि अपने लिए पति प्यारा होता है। यही तत्व वा दैवी-विधान है।

१६

यद्यपि लोगों को मृत्यु का मानसिक ज्ञान है, तौ भी उस में उन को अमली विश्वास क्यों नहीं होता? इस का समाधान वेदान्त इस प्रकार करता है; मनुष्य के भीतर एक असली आत्मा है जो अमर है; एक शुद्ध आत्मा है जो

अविनाशी, अपरिवर्तनशील है, कल आज और सदा एक समान है। मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु है, जो मृत्यु गवारा नहीं कर सकती, और जिस के लिए कोई परिवर्तन है ही नहीं।

१७

अपने को एक पुरुष या स्त्री कहना, अपने को एक क्षुद्र रेंगने वाला जन्तु बतलाना झूंठ और नास्तिकता है।

१८

ब्रह्म वह है कि जो चक्षु इत्यादि ज्ञान-इन्द्रियों और मन से जाना नहीं जा सकता, बल्कि जो इन मन, चक्षु इत्यादि को अपने २ कामों में लगाता है।

१९

ओ चंचल नास्तिक (अश्रद्धालु)! तू क्यों चिड़चिड़ाता और दुःखी होता है? सिवाय तेरे मधुरात्मा (दैवी-विधान) के संसार पर अन्य किसी का भी अधिपत्य नहीं है।

२०

तुम कौन हो? शुद्धात्मा बल्कि सब का अनन्त निष्कलंक और अमर आत्मा ही तुम्हारा आत्मा है।

२१

क्या तुम्हें अपने दिव्यात्मा के विषय में सन्देह है? अपने हृदय में इस सन्देह की अपेक्षा यदि गोली होती तो अच्छा होता।

२२

ईश्वर ही एक सत्य है, संसार वा नाम रूप (दृश्य) माया मात्र है।

२३

शरीर केवल छाया है; शुद्ध स्वरूप वा वास्तविक

आत्मा तो परम-सत्य है।

२४

असली मनुष्य, सच्चा मनुष्य तो ईश्वर वा परमात्मा है; इस से अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

२५

शुद्ध आत्मा, अर्थात् असली ईश्वर मन और शब्दों की पहुँच से परे है।

२६

ब्रह्म मानसिक विवेचना और बोध का विषय नहीं हो सकता। मन और वाणी उस से विस्मित (व्याकुल) हुए वापिस लौटते है।

२७

आप में एक ऐसी वस्तु है जो सुषुप्ति काल में भी जागती रहती है, वह आपकी वास्तविक आत्मा, परम चिच्छक्ति अथवा चेतन स्वरूप है।

२८

लोग पूछते हैं "क्या आप ईश्वर का एक अंश है"? नहीं, नहीं, ईश्वर के भाग नहीं हो सकते। ईश्वर तोड़ा फोड़ा नहीं जा सकता। यदि ईश्वर अनन्त है, तब तुम अवश्य पूर्ण ईश्वर हो; ईश्वर के भाग नहीं हो सकते।

२९

प्र०—क्या आप का ईश्वर (के अस्तित्व) में विश्वास है?

उ०—"मैं ईश्वर को जानता हूं", हम विश्वास तो उस चीज़ में करते हैं जिस को हम जानते नहीं, और जो हम पर जबरन मढ़ी गई हो। ईश्वर में विश्वास करना, इस का क्या अर्थ है? आप उस के विषयमें क्या जानते हैं"? "मैं ईश्वर को जानता हूं! मैं वही हूं; मैं वही हूं"।

३०

जहां एक अपने से अन्य न किसी को देखता है, न सुनता है, और न जानता है, वही अनन्त है, क्योंकि जब तक आप से अतिरिक्त कोई वस्तु मौजूद है तब तक आप परिच्छिन्न और अन्तवान हो।

३१

अनन्त ही परमानन्द है। किसी अन्तवान् में परमानन्द नहीं होता। जब तक आप अन्तवान् हैं, तब तक आपके लिए परमानन्द नहीं, सुख नहीं। अनन्त ही परमानन्द है, केवल अनन्त ही परमानन्द है।

३२

कोई भी आपके पास आवे, ईश्वर समझ कर उस का स्वागत करो, परन्तु उस समय साथ २ अपने को भी अधम मत समझो। यदि आज आप बंदी खाने में हो तो कल आप प्रतापवान् (परम पद प्राप्त) हो सकते हो।

३३

आप ही के भीतर सच्चा आनन्द है। आप ही के भीतर दिव्यामृत का महासागर है। इसे अपने भीतर ढूंढ़िये, अनुभव कीजिए, महसूस कीजिए, यह अर्थात् आत्मा यहीं है। यह न शरीर है, न मन है, और न मस्तिष्क ही है। यह न इच्छाएं है, न इच्छा-शक्ति और न इच्छित पदार्थ ही है; आप इन सब से ऊपर हो। यह (नाम रूप) सब आभास मात्र हैं। आप ही मुसकराते हुए फूल और चमचमाते हुए तारों के रूप में प्रगट होते हैं। इस संसार में ऐसा कौन है जो आप में किसी चीज़ की अभिलाषा उत्पन्न कर सकता है।

३४

जिस क्षण आप इन बाह्य पदार्थों की ओर मुख फेरोगे

और उन को पकड़ना तथा रखना चाहोगे, उसी क्षण वे आप को छलकर आप के हाथ से निकल भागेंगे। और जिस क्षण आप इन की ओर पीठ करोगे और प्रकाशों के प्रकाश स्वरूप अपने निजात्मा की ओर मुख करोगे, उसी क्षण शांचकर (कल्याण कारी) अवस्थाएं आप की खोज में लग जाएंगी। यह दैवी विधान है।

३५

जब कभी मनुष्य किसी सांसारिक वस्तु से दिल लगाता है, जब कभी मनुष्य किसी पदार्थ के साथ उसी पदार्थ के लिए प्रेम करने लगता है, जब कभी मनुष्य उस पदार्थ में सुख ढूंढ़ने का यत्न करता है, उस को धोका होता है, वह अपने को केवल इन्द्रियों का मूढ़ पाएगा। आप सांसारिक पदार्थों से आसक्ति करके सुख नहीं पा सकते। यही दैवी-विधान है।

३६

शक्ति-शाली मुद्रा (रुपय) में विश्वास न करो, ईश्वर पर भरोसा रखो। इस पदार्थ अथवा उस पदार्थ पर भरोसा न करो। ईश्वर में विश्वास करो। अपने स्वरूप वा आत्मा में विश्वास करो।

३७

अहंकारी मत बनो; घमण्डी मत बनो। कभी मत समझो कि आप के परिच्छिन्न आत्मा की भी कोई वस्तु है, वह आपके असली आत्मा ईश्वर की वस्तु है।

३८

शरीर से ऊपर उठो। यह समझो और महसूस करो कि मैं अनन्त और परमस्वरूप हूं, और (इस कारण) मुझ पर मनो-विकार और लोभ भला कैसे प्रभाव डाल सकते हैं।

३९

आप अपने ईश्वरत्व में निवास कीजिए, फिर तो आप स्वतन्त्र हैं, स्वयं अपने स्वामी और सारे विश्व के शासक हैं।

४०

जिस समय मनुष्य विश्व-आत्मा को अपनी निजी आत्मा अनुभव करता है, तो सारा विश्व उसके शरीर के समान उसकी सेवा करता है।

४१

भूख प्यास शरीर के हैं, और मन से भान होते हैं, परन्तु वह स्वयं, शुद्ध-आत्मा शरीर की थकान, भूख अथवा प्यास से न व्यथित होता है और न विक्षिप्त होता है।

४२

अपने चित्त को शान्त रखो, अपने मन को शुद्ध विचारों से भरदो और कोई भी मनुष्य आपके विरुद्ध अपने को खड़ा नहीं कर सकता। ऐसा दैवी-विधान है।

४३

दैवी-विधान यह है कि मनुष्य को भीतर से विक्षेप रहित शान्त तथा क्षोभ-रहित होना चाहिये और शरीर को सदा चलता फिरता रखना चाहिये। चित्त को स्थितिःशास्त्र के नियमों के अधीन रखना चाहिये और शरीर को गति-शास्त्र के नियमों के अधीन अर्थात् शरीर काम में और भीतरी आत्मा सदा शान्त हो, यही दैवी-विधान है। स्वतन्त्र हो।

४४

यह वेधने योग्य परिच्छिन्नात्मा, जो हम में और दूसरों में पाप का उत्पादक मात्र है, इसे हमें फैंक डालना चाहिये।

४५

निष्पापावस्था वास्तव में शुद्ध आत्मा का गुण है, परन्तु

व्यवहार में भ्रम से यह शरीर का गुण समझा जाता है।

४६

निम्न लिखित ध्वनि के समान शब्द लोगों का फुफकारते हुए सर्प के समान लगते हैं: तुम स्वयं ईश्वर हो, पवित्रों के पवित्र हो। संसार (वास्तव में) संसार नहीं है। तुम ही सब में सब कुछ परम शक्ति हो, वह शक्ति कि जिसका कोई शब्द, शरीर अथवा बुद्धि निरूपण नहीं कर सकते; तुम शुद्ध "मैं हूं" हो। वही तुम हो।

४७

मैं स्वतन्त्र कब हूंगा?

जब परिछिन्न "मैं" का अन्त होजाएगा।

४८

ईश्वर क्या है? ईश्वर एक रहस्य (पहेली) है।

४९

वह कौन है जो आप के सम्मुख होता है, वह कौन है जो सीधा आपकी ओर देखता है, जबकि आप किसी मनुष्यकी ओर निगाह उठाते हैं? वह परमात्मा है।

५०

अनन्त शक्यता अर्थात् वह अनन्त शक्ति जो किसी परिच्छिन्न रूप अथवा आकार में गुप्त वा अप्रकट है, और शब्द बीज का वास्तविक अर्थ है, वह भीतर से अनन्त है, न कि उसका ऊपरी या बाहिरी रूप। वह बाह्यरूप अनन्त नहीं।

५१

आदि बीज के लाख पुश्त के वंशज में भी वही अनन्त सामर्थ्य तथा शक्यता है जो आदि बीज मे थी।

५२

मनुष्य के भीतर की अनन्तता, अनन्त सामर्थ्य अथवा शक्ति स्थाई और निर्विकार है । अनन्तता कैसे नाश हो सकती है ? इसका नाश कभी नहीं होता ।

५३

अज्ञान से तुम अपने को शरीर कहते हो, परन्तु शरीर तुम हो नहीं । तुम अनन्त शक्ति हो, ईश्वर हो, नित्य-स्थाई और निर्विकार स्वरूप हो । वही तुम हो, उसे जानो और तुम फिर अपने को सारे संसार में और समस्त विश्व में बसा हुआ पाओगे ।

५४

यह एक अनन्त राम ही है, जो सब शरीरों में प्रतिबिम्बित है, अज्ञानी लोग इस संसार में कुत्ते की भांति आते हैं । कृपया इनका रूपान्तर कर दो । इस संसार में घर के, दर्पण के और शीशभवन के स्वामी की भांति प्रवेश करो । इस संसार में dog (कुत्ते की भांति नहीं वरन् god (ईश्वर) की भांति आओ, और फिर आप शीश भवन के स्वामी और सारे विश्व के मालिक हो जाओगे ।

५५

मनुष्य का असली स्वरूप ईश्वर है । यदि ईश्वर, मनुष्य का निजी आत्मा न होता तो इस संसार में किसी भी ऋषि अथवा पैग़म्बर का आना कभी सम्भव नहीं होकता ।

५६

सारा संसार स्वर्ग है, और ईश्वर को कभी भी धोका नहीं दिया जा सकेगा ।

५७

"अहं ब्रह्मास्मि" का न कहना पाप है ।

५८

वेदान्त के अनुसार स्वतः सिद्ध सत्य यह है, कि तुम पहिले ही से ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो; तुमने अपने ईश्वरत्व को जनाना नहीं है, उसे केवल जानना, अनुभव करना या महसूस करना है।

५९

वेदान्त आप से यह अंगीकार कराना (या दर्शाना) चाहता है कि (दान) देने में आनन्द है, लेने अथवा भीख मांगने में नहीं।

६०

वेदान्त के अनुसार किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाना, भीतरी या निजस्वरूप आत्मा के विरुद्ध घोर पातक कर्म है।

६१

व्यावहारिक (अमली) वेदान्त क्या है ?
धक्का-पेल करना और बढ़ता हुआ परिश्रम, न कि जकड़ा हुआ आलस्य;
काम में आनन्द, न कि थकानेवाली वेगार;
चित्त की शान्ति न कि संशय रूपी घुन;
संगठन न कि अस्त व्यस्त अवस्था;
उचित सुधार न कि कट्टर (अपरिवर्तनशील) रीति रिवाज;
सच्ची और पक्की भावना; न कि पुष्पित वाणी;
तथ्य भरी कविता, न कि कपोल कल्पित गल्प;
घटनाओं का न्याय, न कि मृतक लेखकों के प्रमाण;
जीता जागता अनुभव, न कि मुर्दा वाक्य लेख।
उपरोक्त सब मिल कर व्यावहारिक वेदान्त होते हैं।

६२

पुस्तकों में छपे हुए और कीड़ों का आहार होने के लिए अलमारियों में रखे हुए वेदान्त से काम न चलेगा, तुम्हें इसे आचरण में लाना होगा।

६३

यदि वेदान्त आप की सर्दी अर्थात् तेज-हीनता (निर्बलता) को दूर नहीं करता, यदि यह आप को प्रसन्न नहीं करता, यदि यह आप के बोझों को परे नहीं हटाता, तो उस को ठुकरा कर अलग फैंक दो।

६४

वेदान्त के अनुसार समस्त करुणा (दया) निर्बलता है।

६५

वेदान्त साधारण लोगों का ध्यान इस लिए आकर्षण करता है कि वह उन के धर्म-ग्रन्थ की शिक्षा है; शिक्षित हिन्दू को वह इस लिए आकर्षित करता है कि सूर्य के तले (संसार भर में) दर्शन शास्त्र कहलाने योग्य कोई भी ऐसा दर्शन नहीं है; कि जो वेदान्तिक अद्वैतवाद का समर्थन न करे, और न ऐसा कोई शास्त्र (विज्ञान) ही है कि जो वेदान्त अथवा सत्य के पक्ष की सहायता तथा (उस के प्रचार की) वृद्धि न करे।

६६

वेदान्त-दर्शन के प्रचार का अत्यन्त सर्वोत्तम मार्ग इस का अपने आचरण में लाना है, अन्य कोई भी शाहराह (राज्यपथ वा सुगम मार्ग) नहीं है।

६७

जिस समय आप अपने को एक ऐसी विचित्र, अकथ-

नीय भावना वा कल्पना में ढाल देते हैं कि जो हम (और आप) दोनों से उत्तम है। उसी समय आप मुझे (वास्तवमें) पाते हैं। वेदान्त आप को यही बतलाता है।

६८

यदि आप किसी अर्थ या उद्देश्य की उपलब्धि चाहते हैं, यदि आप किसी भी पदार्थ को पाना चाहते हैं, तो उस की परछांईं के पीछे मत दौड़ो। अपने ही सिर को छुओ, अपने भीतर प्रवेश करो। इस तथ्य का अनुभव करो, तब आप देखेंगे कि तारागण आप (के हाथों) की ही कारीगरी है, आप देखेंगे कि प्रीति के सारे पदार्थ, सब मोहने और लुभाने वाली चीज़ें, केवल आप का अपना ही प्रतिबिम्ब अथवा परछांई (प्रति छाया) हैं।

६९

अमरपुरी (सुर लोक) आप के भीतर है; स्वर्ग अर्थात् आनन्द का धाम आप के भीतर है; और तब भी आप सुख को बाज़ारों में, अन्य पदार्थों में ढूँढ़ते फिरते हैं, उस वस्तु को बाहर ढूंढ़ते हैं; अर्थात् इन्द्रियों के विषय में बाहर ढूँढ़ते हैं। कैसा आश्चर्य है।

७०

तुम एक ही समय में मांस (हाडमांस के शरीर) के दास और विश्व के स्वामी नहीं बन सकते।

७१

इस युग के चाहे सारे बड़े बड़े व्याख्यानदाता (उपदेशक) आजाएं; ईसा अथवा ईश्वर स्वयं आकर उपदेश करें, परन्तु जब तक आप अपने को स्वयं उपदेश देने के लिए तत्पर नहीं हैं, तब तक दूसरों के उपदेशों से किंचित लाभ नहीं होगा।

७२

वेदान्त आप को प्रचण्ड-प्रवृत्ति (अत्यन्त कार्य) द्वारा परिच्छिन्न आत्मा अर्थात् तुच्छ अहंकार से ऊपर उठाना चाहता है।

७३

वेदान्त चाहता है कि आप काम को काम की खातिर करें।

७४

कर्म का अर्थ वेदान्त में सदा असली आत्मा से मेल और विश्व से अभिन्नता है।

७५

कर्म क्या है?

वेदान्त के अनुसार अत्यन्त प्रवृत्ति वा अत्यन्त कर्म-विश्राम है।

समस्त सत्यकर्म विश्राम है।

७६

शरीर को तो कर्मशील उद्योग (प्रयत्न) में और मन को शान्ति और प्रेम में रखने का अर्थ इसी जन्म में दुःख और पाप से मुक्ति है।

७७

अन्तर-आत्मा शान्त रहे और शरीर निरन्तर काम में लगा रहे। अर्थात् शरीर गतिशास्त्र के नियमों के आधीन हुआ कर्म में प्रवृत रहे और अन्तर-आत्मा सदा स्थिति शास्त्रानुसार स्थिर रहे।

७८

आप का काम अव्यक्तिगत (कर्तृत्व भाव से रहित) हो, आप का काम स्वार्थ पूर्ण अहंकार की मलीनता से रहित हो,

आप का काम सूर्य्य और तारागणों के काम के समान हो; आप का काम चन्द्रमा के काम क सदृश हो। तभी आप का काम सफल हो सकता है।

७९

शरीर और मन निरन्तर काम में इस हद तक प्रवृत्त रहें कि परिश्रम बिल्कुल भी ज्ञात न पड़े।

८०

अपने इस तुच्छ अहंकार को त्याग दो, अपने काम के करने में इसे भुला दो, और तब आप की सफलता अवश्य बनी बनाई है; अन्यथा हो नहीं सकता। अपने काम में सफलता पाने से पहिले सफलता की आकांक्षा अवश्य नष्ट हो जानी चाहिये।

८१

निर्लिप्त साक्षी के स्वरूप में सब झंझटों से स्वतंत्र हो कर कर्म करो। सदा स्वतंत्र वा निर्लिप्त रहो।

८२

जहां कहीं भी तुम हो, दानी की हैसियत से काम करो; भिक्षुक की हैसियत से कदापि न करो। ताकि आप का काम विश्वव्यापी काम हो, और किंचितमात्र भी व्यक्ति गत न हो।

८३

संसारी मनुष्य के लिए निरन्तर कर्म, तथा निरन्तर परिश्रम ही सब से महान् योग है। तभी संसार के लिए आप सब से महान् कार्य्य कर्ता हैं, जब आप अपने (स्वार्थ के) लिए काम नहीं करते।

८४

सफलता प्राप्त करने के लिए, समृद्धिशाली होने के लिए

आप को अपने कर्मों द्वारा तथा अपने जीवन के दैनिक-व्यवहार से, अपने ही शरीर और पट्ठों को प्रयोगाग्नि में भस्म कर देना और दहन कर देना पड़ेगा। आप को अवश्य उन का प्रयोग करना होगा। आप को अपना शरीर और मन खर्चना होगा, उन्हें जलती हुई अवस्था में कर देना होगा। अपने शरीर और मन को कर्म की सूली पर चढ़ाओ; कर्म करो, कर्म करो; और तब आप के भीतर से प्रकाश प्रदीप्त होगा।

८५

वेदान्त चाहता है कि आप अपनी अन्तरात्मा में निश्चल (स्थिर) रहें।

८६

प्रसन्न कार्यकर्ता! जिस समय तुम सफलता को ढूँढ़ना छोड़ दोगे, उसी समय सफलता अवश्य आप को ढूँढ़ेगी।

८७

वह हमारी स्वार्थ-पूर्ण चंचलता है जो सारा काम विगाड़ देती है।

८८.

यदि आप अधिकारी हैं, तो आप को इच्छा करने की आवश्यकता नहीं; आप के इच्छित पदार्थ आप के पास स्वतः लाए जाएँगे, (अथवा) आप के पास आ जाएँगे; यदि आप अपने को योग्य बना लो, तो सहायता आप के पास अवश्य आवेगी।

८९

जिस क्षण आप लालसा से ऊपर उठते हो, उसी क्षण आप का इच्छित पदार्थ आप को ढूँढने लग जाता है; और

जिस क्षण आप प्रार्थी, इच्छुक, याचक, अथवा भिक्षुक का भाव धारण करते हो उसी क्षण आप परे धकेले जाते हो. आप वह पदार्थ नहीं पाते, आप इच्छित पदार्थ नहीं पा सकते।

६०

अपने भीतर के स्वर्ग को अनुभव करो, तब एक दम सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं, सारे दुःख और व्यथा का अन्त हो जाता है।

६१

शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक पुकार पुकार कर उपदेश देते हैं।

६२

आप का कर्म कर्म की खातिर होना चाहिये।

६३

अपनी इच्छाओं का त्याग कर दो, उन से ऊपर उठो, तब आप द्विगुण शान्ति, तत्काल विश्रान्ति और अन्त में इच्छित फल पाएंगे। स्मरण रखो कि आप की कामनाएं तभी सिद्ध होंगी जब आप उन से ऊपर उठकर परम सत्य में पहुँचोगे। जब आप जान कर या अनजाने अपने आपको ईश्वरत्व में मिटा देते हो, तभी और केवल तभी आप की कामनाओं के पूर्ण होने का काल सिद्ध होता है।

६४

आप का कर्म सफल होने के लिए, आप को उस के परिणाम पर ध्यान नहीं देना चाहिये, आप को उस के नतीजे अथवा फल की परवा नहीं करनी चाहिये साधन और परिणाम को लाकर मिला दो, वही काम आप का उद्देश्य या लक्ष्य हो जाए।

६५

नहीं, परिणाम और नतीजा मेरे लिए कुछ नहीं है, सफलता अथवा असफलता मेरे लिए कुछ नहीं है, मुझे काम ज़रूर करना चाहिये, क्योंकि मुझे काम प्यारा लगता है, मुझे काम काम के लिए ही करना चाहिये। काम करना मेरा उद्देश्य वा लक्ष्य है; कर्म में प्रवृत्त रहना ही मेरा जीवन है। मेरा स्वरूप, मेरा असली आत्मा स्वयं शक्ति है। मैं अवश्य काम करूंगा।

६६

नतीजे की बाबत शोक मत करो, लोगों से किंचित आशा न रखो; अपने ग्रन्थों पर अनुकूल समालोचना अथवा प्रतिकूल नुक्ताचीनी (छिद्रान्वेषण) के विषय अपने को व्याकुल मत करो।

६७

सदा स्वतन्त्र कार्य-कर्ता और दाता बनो; अपने चित्त को कभी भी याचक तथा आकांक्षी की दशा में न डालो। अपना व्यक्तिगत अधिकार करने के स्वभाव से पल्ला छुड़ाओ।

६८

जब आप इच्छा को छोड़ देते हैं, केवल तभी यह सफल होती है। जब तक आप अपनी अभिलाषा को तनी रखेंगे, अथवा इच्छा करते रहेंगे और आकांक्षा तथा अभिलाषा जारी रखेंगे, तब तक दूसरे पक्ष के दिल तक यह (इच्छा) न पहुँचेगी। जब आप इस को छोड़ देते हैं, केवल उसी समय यह (तत् सम्बन्धी) प्रतिपक्षी के हृदय को भेदती (बेधती) है।

९९

भाग्य का दूसरा नाम संकल्प है।

१००

संसार और आप का अड़ोस पड़ोस ठीक उसी प्रकारके होते हैं जैसा उन के विषय में आप का ख्याल वा संकल्प होता है।

१०१

जैसा आप विचार करते हैं वैसे ही आप हो जाते हैं; अपने को आप पापी कहो, तो अवश्य ही आप पापी होजाते हैं, अपने को आप मूर्ख कहो, तो अवश्य ही आप मूर्ख होजाएंगे; अपने को निर्बल (शक्तिहीन) कहो, तो इस संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो आपको बलवान बना सके। अपने सर्व-शक्तित्व को अनुभव करो तो आप सर्व शक्तिमान होते हैं।

१०२

किसी व्यक्ति की भावना को बदल दो, तो उसका सोचने का सारा तरीक़ा उलट पुलट हो जाएगा।

१०३

जिस प्रकार गरुड़ उड़कर उस वायुमण्डल के बाहर नहीं जा सकता कि जिसमें वह उड़ रहा है। इसी प्रकार विचार अपनी सीमा के मण्डल से आगे नहीं बढ़ सकता।

१०४

विचार और भाषा एक ही हैं। बिना भाषा के आप विचार नहीं कर सकते। छोटे बालक को भाषा का ज्ञान नहीं होता, और (इसी कारण) उसका कोई विचार भी नहीं होता।

१०५

जो कोई ख्यालों में निवास रखता है, वह अख्याल और

व्याधिके संसार (चक्र) में निवास करता है। और चाहे वह बुद्धिमान और पण्डित ही जान पड़े, परन्तु उसकी बुद्धिमानता और पाण्डित्य उसी लकड़ी के टुकड़े के समान खोखली है कि जिसको दीमक ने खा डाला हो।

१०६

सच्ची विद्या (शिक्षा) उसी समय आरंभ होती है, जब कि मनुष्य समस्त बाहरी सहारों (सहायता) को छोड़कर अपनी अन्तर्गत अनन्तता की ओर ध्यान फेरता है, और मूल ज्ञान का मानों एक स्वाभाविक स्रोत अथवा महान् नवीन विचारों का स्रोत हो जाता है।

१०७

अपनी विद्वता दर्शानेके लिए बड़े २ और लम्बे २ वाक्य वा श्लोक को उद्धृत करने की योग्यता और वाक्यों तथा प्राचीन धर्म-ग्रन्थों के भाव तोड़ने मोड़ने के लिए व्यर्थ बाल की खाल निकालने की शक्ति, तथा ऐसे विषयों का अध्ययन कि जिनका हमें अपने जीवन में कभी व्यवहार नहीं करना है, यह विद्या (शिक्षा) नहीं है।

१०८

सच्ची शिक्षा (विद्या) का पूर्ण उद्देश्य लोगों से ठीक बातें कराना ही नहीं बल्कि ठीक बातों से आनन्द दिलाना है, केवल परिश्रमी बनाना नहीं बल्कि परिश्रम से प्रेम कराना है।

१०९

यदि विद्या मुझे स्वतन्त्रता तथा मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा देती, तो इस को धिक्कार है, इसे दूर कर दो, मुझे इस की आवश्यकता नहीं। यदि विद्या मुझे बन्धन में रखती है, तो मुझे ऐसी विद्या से कोई प्रयोजन नहीं।

११०

किसी विचार को दक्षता से (चतुराई से) व्यवहार में ले आना और बात है, किन्तु उस के असली भाव को पा लेना बिल्कुल ही दूसरी बात है।

१११

मनुष्य और पशु में प्रधान भेद यह है कि जहां कुत्ते के बच्चे अर्थात् पिल्ले में उस के उत्कर्ष के लिए वंश-परम्परा के नियमानुसार लगभग सब कुछ मौजूद है, वहां शिशु (मानवी बच्चा) अपने पैत्रिक गुणों का विकास और उत्कर्ष शिक्षा और संयोजना (अनुकूलता) द्वारा ऐसा कर सकता है, अथवा कर लेगा कि जिस से सारे संसार को वह अपने अधिकार में ला सके।

११२

भाव जितने बुद्धि वा विवेक के अधीन होते हैं, उतना ही मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ माना जाता है।

११३

शिशु की चेष्टा का कोई प्रयोजन नहीं होता, तो भी शिशु की गणना पृथ्वी के सब से अधिक प्रवृत्त लोगों में से है।

११४

जीवन क्या है ? बाधाओं की एक माला। हाँ जो लोग जीवन के ऊपरी भाग में ही निवास करते हैं, उन के लिए तो यह (जीवन) ऐसा (बाधाओं की माला) ही है; परन्तु जो लोग (प्रेम रूप) जीवन व्यतीत करते हैं, उन के लिए ऐसा नहीं है।

११५

इन्द्रियों का अस्तित्व किस से हुआ ? तत्वों से। तत्वों

की आप को जानकारी किस प्रकार होती है? इन्द्रियां द्वारा। क्या यह दलील चक्ररूप में (कोल्हू के बैल के चलने के समान) नहीं है? यह दलील जागृत (चेतन) अवस्था में संसार के मायिक स्वभाव को स्थापित करती है।

११६

जब तक प्रश्नकर्ता और प्रश्नके विषय बने रहेंगे, तब तक माया के कारागार की दीवारें भी बनी रहेंगी और नाम रूपों से ऊपर उठना असंभव रहेगा।

११७

जागृत अवस्था के अनुभव पर ही यूरोप और अमेरिका के दर्शन-शास्त्र अवलम्बित हैं; और सुषुप्ति तथा स्वप्न अवस्था के अनुभव का ख्याल इन में बहुत थोड़ा अथवा किंचित भी नहीं है। इस कारण हिन्दू का कहना है कि अधूरे आधार (जान कारा) से जब आप आरंभ करते हैं, तो इस विश्व की समस्या का हल आप का किस प्रकार ठीक हो सकता है ?

११८

इस संसार के सारे पदार्थ उन सरोवरों के समान हैं; कि जो एक संमोहित मनुष्य सूखे फर्श पर रचलेता है। और ऐसी दशा में उन पदार्थों का ज्ञान भी कि जिस पर इन के अध्यापक और आचार्य (डाक्टर) लोग घमंड करते हैं और अपने बड़पन की शेखी मारते हैं संमोहिनी विद्या (mypnoism) से अधिक कुछ भी नहीं है।

११६

ऐसे काम जो आप को बहुत प्रिय (हृदय के निकटतर) हैं, जो आप के दिल और धन्धे से सम्बन्ध रखते हैं, उन

को करना अधिक उचित होगा। और परलोक अर्थात् स्वप्न का संसार अपनी फ़िक्र आप कर लेगा।

१२०

सांसारिक आनन्द (भोग) की भूमि में बोए हुए बीज से आध्यात्मिक उन्नति का पैदा नहीं उगता।

१२१

आध्यात्मिक शक्तियों में तथा जिन लोगों से आप का समागम हो, उन की अनन्त सामर्थ्य में विश्वास रखो। (लोगों के विषय में) निर्णय कर लेना त्याग दो। कभी भी (किसी के विषय में) अपना विशेष मत स्थिर मत करो; किसी को अपराधी मत ठहराओ।

१२२

जिस प्रकार राज सिंहासन पर राजा की अपनी उपस्थिति ही दर्बार भर में व्यवस्था स्थापित कर देती है; इसी प्रकार मनुष्य का अपने ईश्वरत्व में तथा निजी महिमा में स्थित होना ही सारे वंश में व्यवस्था तथा स्फूर्ति स्थापित कर देता है।

१२३

चिमटा प्रायः और सब चीज़ों को पकड़ सकता है, परन्तु वह पीछे लौट कर उन्हीं उँगलियों को जो इसको पकड़े हुए हैं किस प्रकार पकड़ सकता है? इसी प्रकार मन अथवा बुद्धि से उस महान् अज्ञेय को, जो स्वयं उसी का आदि मूल है, जानने की किसी प्रकार भी आशा नहीं की जा सकती।

१२४

वेदों का ज्ञान-काण्ड ही असली वेद है और इसी का

हिन्दुओं के षट-दर्शन के लेखकों, जैन और बुद्ध-धर्म के लेखकों ने श्रुति के रूप में हवाला दिया है।

१२५

जिस समय हमें हमारी शारीरिक निर्बलता अपने को महसूस कराती है, उसी क्षण हम स्वर्ग से पतित होजाते हैं। जिस क्षण हम भेद-भाव के वृक्ष का फल चख लेते हैं, उसी क्षण हम को स्वर्ग से भगा दिया जाता है; परन्तु हम अपने मांस (शरीर) को सूली पर चढ़ा कर उस खोए हुए स्वर्ग को फिर से प्राप्त कर सकते हैं।

१२६

इस लिए त्याग के भाव को ग्रहण करो और जो कुछ आप को प्राप्त हो उस को पलट कर दूसरों को दे डालो। स्वार्थ-पूर्ण शोषण (absorption) मत करो और इस से (शुद्ध) अवश्य हो *जाएंगे।

---

*प्रकाश-विज्ञान में जो प्रकाश वस्तुओं पर पड़ता है, वह सात रंगों का होता है। प्रकाश के जिस २ रंग को जो वस्तु खा जाती (जज़्ब कर लेती) है वह रंग उस वस्तु का नहीं होता बल्कि जिस रंग को वह वस्तु वापिस सूर्य की ओर लौटाती है, उसी रंग की वह नज़र आती है। अर्थात् सूर्य के प्रकाश के जिस रंग को वस्तु स्वयं अपने भीतर प्रवेश न करके उलटा सूर्य की ओर वापिस लौटा देती है, उसी रंग की वह वस्तु दिखाई देने लगपड़ती है। और जो वस्तु सूर्य के प्रकाश के सारे रंगों को खा जाती है, वह काली हो जाती है और जो किसी भी रंग को खाती नहीं बल्कि प्रकाश के सारे के सारे रंगों को सूर्य की ओर वापिस लौटा देती है, वह वस्तु शुद्ध, सफेद हो जाती

है। इस लिये स्वार्थ-पूर्ण ग्रहण का निषेध करके श्वेत होने का उक्त नियम इस वाक्य में राम ने बतलाया है।

१२७

यदि आप कर्म के विधान को यह कह कर समझावें कि यह ईश्वर की इच्छा है, कि यह उसका काम है; तो यह कोई (ठीक) उत्तर नहीं; यह तो स्पष्ट रूप से प्रश्न से कतराना है; और प्रश्न से कतराना बुद्धिमता (तत्व-विचारात्मक) नहीं है, अर्थात् अपनी अज्ञानता का प्रगट कर देना है।

१२८

ऐसे सब कर्मों और क्रियाओं को कि जिनको यदि आप-स्वयं करते तो हानिकारक अथवा पाप रूप होते, आप घोर तम पाप समझ लीजिए; संसार के ऐसे कर्मों से आप घृणा कीजिए और विमुख हूजिए, परन्तु ऐसे कामों अथवा क्रियाओं के करनेवालों से न घृणा कीजिए और न नफ़रत। उनको ग़लत समझने का आपको कोई अधिकार नहीं है

१२९

कांटे बिना कोई गुलाब नहीं होता, इसी प्रकार इस संसार में भी अमिश्रित (खालिस) भलाई अलभ्य है। जो पूर्ण रूप से शुद्ध (अच्छा) है, वह केवल परमात्मा है।

१३०

स्कापिनहावर (Schopenhauer) का कहना है "कि आनन्द को अपने भीतर पाना कठिन है," परन्तु उसको अन्यत्र पाना तो असंभव है।

१३१

स्वर्ण और लोहा तो स्वर्ण और लोहा खरीदने के लिए ही

उपयुक्त हैं; आनन्द भौतिक पदार्थों की श्रेणी में से नहीं है, यह मोल नहीं लिया जा सकता।

१३२

जिनका यह मत है कि उनका आनन्द विशेष स्थितियों पर अवलम्बित है; वे देखेंगे कि सुख की घड़ी सदा उनसे परे हटती जाती है और मृग-तृष्णा (छलावे) के समान निरन्तर भागती चली जाती है।

१३३

जैसे को तैसा आकर मिलता है; आप यहीं (इसी संसार में) ईश्वर के आनन्द को अपने भीतर अनुभव करो, सफलता का आनन्द आपकी ओर खिंचता हुआ चला आवेगा।

१३४

वही अत्यन्त सुखी है और धन्य है, कि जिसका जीवन निरन्तर स्वार्थ त्याग (की श्रृंखला) है।

१३५

वह मनुष्य सुखी है जो कि जीवन के अव्यक्तिगत (निःस्वार्थ पूर्ण) श्वासको,जो गुलाब की क्यारियों और शाह बलूत के कुंजों में प्रेरणा उत्पन्न करता है, पुरुषों और स्त्रियों के समूहों में देख कर सारे जगत को स्वर्गीय उपवन बनालेता है।

१३६

यदि आप अपनी शक्ति को क़ायम रखना चाहते हैं, यदि आप अपने स्वास्थ्य को स्थिर रखना चाहते हैं, और आपकी इच्छा है कि नाड़ी-संस्थारूपी घोड़ा जीवन के बोझ को सुगमता पूर्वक उठा सके, तो आपको अहंकार युक्त विचारों के बोझ को हलका करना पड़ेगा।

१३७

आप अपने प्रति सच्चे बने रहें, और संसार में अन्य किसी बात की ओर ध्यान न दें।

१३८

संसार में व्यथा का प्रधान कारण यह है कि "हम लोग अपने भीतर नहीं देखते, स्वयं अपना मत स्थिर नहीं करते, अनेक बातों में आवश्यकता से अधिक विश्वास कर लेते हैं, अपने विचार करने को हम बाहरी शक्तियों पर आसरा रखते हैं।"

१३९

मित्रों अथवा शत्रुओं द्वारा किया हुआ छिद्रान्वेषण आप को अपनी सच्ची आत्मा, (अर्थात्) ईश्वर में जगाने के लिए रात के भयानक स्वप्न के समान है।

१४०

अरे! स्वर्ग आपके भीतर है; इन्द्रियों के विषयों में आनन्द मत ढूँढ़ो; अनुभव करो कि आनन्द आप ही के भीतर है।

१४१

संपूर्ण स्वर्ग आप के भीतर है; संपूर्ण सुख का मूल आप के भीतर है। ऐसा होते हुए अन्य जगह सुख को ढूँढ़ना कितना अनुचित वा अन्याय-पूर्वक है।

१४२

मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप है।

१४३

जब समस्त संसार आप ही की रचना, आप ही का संकल्प मात्र है, तो आप अपने को तुच्छ और हीन पापी क्यों समझते हैं? आप अपने को भय रहित स्वावलम्बी

परमात्मा का रूप क्यों नहीं समझते ?

१४४

राम कहता है कि सर्व रूप परमात्मा के साथ एक ताल होने का परिणाम स्वरूप सफलता लाभ होती है। सफलता सदा आप के भीतर की भलाई का परिणाम होती है, सफलता ईश्वर में आप के तन्मय तथा लीन होजाने का परिणाम होती है। सदा यही हुआ करता है।

१४५

स्वतन्त्र मनुष्य वही है जिसका भीतरी प्रकाश उस के चारों ओर सुन्दरता का दीप्त मण्डल फैला देता है, और जिस से केवल स्वर्गीय प्रेम ही प्रेम फूटता रहता वा झलकता रहता है।

१४६

जो मनुष्य मुक्त है, सारी प्रकृति (कुद्रत) उस की बन्दना करती है, सारा विश्व उसके सामने सिर झुकाता है। मैं वह (मुक्त) हूं, आप मुक्त हैं। चाहे आज यह माना जाय या नहीं, पर वह एक निष्ठुर सत्य है, और सब लोगों को शीघ्र या देर में इस को अनुभव करना पड़ेगा।

१४७

अपने से अतिरिक्त और किसी के प्रति आप का उत्तर दायित्व नहीं। यदि आप प्रसन्नता और शान्ति का यह सब से पवित्र नियम भंग करते हैं तो आप अपने प्रति घोर अपराधी हैं।

१४८

ओम मन्त्र का पहिला अक्षर अ (A) उस निष्ठुर तत्व, अपने आत्मा को प्रतिपादन करता है, कि जो जागृत

अवस्था के भ्रमात्मक भौतिक संसार को प्रकाशता और उस के पीछे (अधिष्ठान रूप से) स्थित है । उ (u) अक्षर मानस संसार को प्रतिपादन करता है और अन्तिम अक्षर म् (m) उस परमात्मा (परब्रह्म) को प्रतिपादन करता है, कि जो शून्यावस्था के पीछे (अधिष्ठान रूप से) स्थित है और जो वहां (सुषुप्ति काल में) अपने को अज्ञात रूप से प्रकाशता है ।

१४६

यदि विज्ञान-शास्त्र पवित्र ओंकार अक्षर के प्रभाव (सामर्थ्य) सम्बन्धी सच्चाई का विरोध करे, तो उस को धिक्कार है ।

१५०

वही सुखी है कि जो ओंकार में रहता सहता, चलता फिरता और अपना अस्तित्व रखता है। अपने भीतर के इस कोष को अनुभव करने के लिए अथवा स्वर्ग के साम्राज्य का फाटक खुलवाने के लिए इस ताली का प्रयोग करना होता है ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(४) प्रेम और भक्ति।

१

प्रेम को अर्थ व्यवहार में अपने पड़ोसियों के साथ और जिन लोगों को आप मिलते हैं उन के साथ अपनी एकता और अभेदता का अनुभव करना है।

२

प्रेम शिल्प (व्यवसाय भी है और शास्त्र भी है। वैज्ञानिक आविष्कार (Scientific discoveries) तो महान् सूर्य अर्थात् प्रेमाग्नि अथवा एकत्र अनुभव की केवल चिंगारियाँ और स्फुलिंग (चमचमाहट) है।

३

एक मात्र शास्त्र-अनुकूल धर्म (अर्थात् नियम) है प्रेम। प्रेम में निवास करना ही अपने प्रति सच्चा रहना है।

४

सच्चा प्रेम सूर्य के समान आत्मा (मन) को विकसित (विस्तीर्ण) कर देता है। मोह मन को पाले के समान सकुड़ा देता और संकुचित कर देता है।

५

प्रेम को मोह से मत मिलाओ (अर्थात प्रेम को भूल से मोह मत समझो)।

६

भक्ति (प्रेम) कोई चिल्लाने वा मांगने की अभावात्मक दशा नहीं है। यह तो बराबरी फड़कती मधुरता और दिव्य लापरवाही का अकथ्य भाव है। जो कुछ हम देखते

हैं उस में सर्व रूप को देखना भक्ति (प्रेम) है। जहां कहीं दृष्टि पड़े उसी में अपने आत्मा को देखना भक्ति (प्रेम) है। यह अनुभव करना भक्ति है कि सर्व रूप सुन्दरता है और वह मैं हूं। तत्वमसि अर्थात् वही तू है।

७

विषय-वासना विहीन प्रेम तो आध्यात्मिक प्रकाश है।

८

प्रेम अथवा अभेदता का मत जब दो व्यक्तियों में आचरित होता है। तो भेद के भ्रम को मिटा देता है।

९

जीवन प्रतिवादिता (Struggle for existence) में कौन सी वस्तु विजय होती है ? प्रेम !

१०

प्रेम का अर्थ सुन्दरता का प्रत्यक्षीकरण (perception) है।

११

केवल प्रेम ही एक मात्र दैवी-विधान है। और सब विधान सुव्यवस्थित (संगठित) लूट मार है। केवल प्रेम को ही नियम (विधान) भंग करने का अधिकार है।

१२

प्रेम को इस हद तक गलत समझा गया है कि शब्द प्रेम का उच्चारण मात्र ही प्यारे लोगों को दिव्य ज्योति की जगह कामुकता तथा मूर्खता के भाव की सूचना दे देता है।

१३

प्रेम अन्तः प्रेरणा करता है, मस्तक (बुद्धि) उस की व्याख्या करता है। जिस प्रकार वस्त्रों से पहिले शरीर

होता है, उसी प्रकार विचारने से पहिले हमेशा भाव वा भावना होती है।

१४

समस्त इच्छा प्रेम है और प्रेम ईश्वर है; और वह ईश्वर तुम हो।

१५

जहां प्रेम है वहां न छोटाई है न बड़ाई, न ऊँचाई न नीचाई।

१६

जिस समय आप प्रेम में एकीभू होते हैं, तब सारे चमत्कार सम्भव हो जाते हैं।

१७

जिस मनुष्य ने कभी प्रेम नहीं किया, वह (मनुष्य) कदापि ईश्वरानुभव नहीं कर सकता। यह एक तथ्य है।

१८

भय केवल संकुचित प्रेम है, अन्यथा भय पर प्रेम किस प्रकार विजयी हो सकता है?

१९

दिखलावे का प्रेम, झूठे भाव और बनावटी कल्पना ईश्वर के प्रति अपमान हैं।

२०

जिस समय आप विरह और भेद के दल दल में फँस जाते हैं, तभी आप सुख से रहित और व्यथा व्याधि से पीडित होते हैं। जिस समय आप अपने को समस्त और सर्वरूप अनुभव करते हैं, तभी आप पूर्ण और सर्वरूप होते हैं।

२१

व्यथा या व्याधि क्या है? प्रेम के अभाव के कारण संकोच

वा संकीर्ण वृत्ति, परछाँई के हिलने पर फड़ फड़ाना, और भय के स्वप्न देख कर चिल्लाना है।

२२

जब स्पष्ट कोई बात बिगड़ रही हो, तो उस समय अपने को प्रेम के विधान से ठीक करने के स्थान पर अड़ोस पड़ोस से झगड़ना ऐसा है जैसा कि टेलीफ़ोन के अदृष्ट सिरे पर से बोलने वाले किसी मित्र से अशुभ समाचार के सुनने पर टेलीफ़ोन के सुनने वाले भाग को तोड़ डालना।

२३

यह सत्य है कि बकवादियों, बाह्य आकृतियों वा रूपों में विश्वास करने वालों, और लज्जा जनक प्रतिष्ठा के निर्लज्ज दासों की संगत के समान और कोई विषैला पदार्थ नहीं है। परन्तु जहां पर प्रेम-प्रभू का डेरा लगता है, वहां पर कोई भी गुस्ताख़ (अशिष्ट) आवारा चक्कर नहीं लगा सकता।

२४

ओ मनुष्य ! तुम ही अपनी दृष्टि से सब वस्तुओं को चित्ताकर्षक बनाते हो। उन आंखों से जब तुम बन की ओर देखते हो, तो तुम ही स्वयं अपना तेज पदार्थ पर डाल देते हो, और फिर तुम ही उस के प्रेम में आसक्त होते हो।

२५

काल तो प्रेम के स्वाभाविक बोध के साथ २ रहने के लिये विवश है।

२६

पहिले दिल जीतो, फिर बुद्धि (विवेक) से प्रार्थना करो। जहां बुद्धि निराश होती है, वहां प्रेम को फिर भी

आशा हो सकती है। ऐसी कहानी है कि यात्री के शरीर पर से आन्धी कोट न उतरवा सकी, परन्तु गर्मी ने उतरवा दिया।

२७

वह मनुष्य कितना ही धन्य है (अर्थात् भाग्यवान् है) कि जिस का माल (सम्पत्ति) चुरा लिया गया हो, और तिगुण धन्यवान् वह मनुष्य है कि जिसकी स्त्री भाग जाये, यदि ऐसा होने से उसका प्रेम स्वरूप के साथ सीधा संयोग हो जाय।

२८

यह मेरे प्राण, हे प्रभू! स्वीकृत कीजिये, और निज अर्पित होने दीजिये। (इस कविता में शब्द "प्रभू" से तात्पर्य आकाश में बैठा हुआ, बादलों में सर्दी खाने वाला गुप्त हव्वा नहीं है; प्रभू का अर्थ है सर्वस्वरूप, तुम्हारा सहवर्त्ती जन)

२९

प्रेम, मैं इस समस्त परिवर्त्तनशील संसार का आदि और अन्त हूँ। ऐ मनुष्य! इस से परे अन्य कुछ भी नहीं क्योंकि जिस प्रकार माला के दाने (मणके) धागे में पुरोये होते हैं, उसी प्रकार केवल एक (प्रेम स्वरूप) में यह सारा विश्व बंधा हुआ है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

(५) त्याग वा संन्यास।

१

बिना कामना के कर्म सर्वोत्तम त्याग अथवा ईश्वराधना का पर्याय वाचक है।

२

जिस प्रकार मधु में फंस जाने पर मक्खी अपनी टांगों को मधु से धीरे-धीरे परन्तु दृढ़तापूर्वक साफ़ कर लेती है, इसी प्रकार व्यक्तियों और रूपों से आसक्ति का प्रत्येक कण हमें दूर करना आवाश्यक है।

३

सम्बन्धों को एक एक करके काटना पड़ेगा, बन्धनों को यहां तक तोड़ना पड़ेगा कि मृत्यु के रूप में अन्तिम अनुग्रह सम्पूर्ण अनिच्छित त्याग में सफली-भूत हो।

४

दैवी-विधान का चक्र निर्दयतापूर्वक घूमता रहता है। जो इस विधान के अनुकूल चलता है वह इस पर सवारी करता है; परन्तु जो अपनी इच्छा को ईश्वर-(दैवी-) इच्छा (दैवी-विधान) के प्रतिकूल खड़ा करता है, वह अवश्य ही कुचला जायगा और उसको प्रोमिथियंस के समान भारी पीड़ा भोगनी पड़ती है।

५

इस त्याग को हिन्दू ज्ञान कहते हैं; अर्थात् त्याग और ज्ञान एक ही और वही वस्तु हैं।

६

जो ज्ञान त्याग का पर्यायवाची है वह सत्य का

ज्ञान है, वास्तविक आत्मा का ज्ञान है, जो तुम वास्तव में हो उस का ज्ञान है। यह ज्ञान त्याग है, इस ज्ञान को प्राप्त कर लो तो आप त्यागी मनुष्य हो।

७

आप के स्थान, पदवी और शारीरिक परिश्रम से त्याग का कोई सम्बन्ध नहीं; उन से इस का कोई सम्बन्ध नहीं।

८

त्याग केवल आप को सर्वोत्तम स्थिति में रखता है; आप को उत्कर्ष दशा वा श्रेष्ठ पद में स्थित रखता है।

९

त्याग केवल आप के बल को बढ़ा देता है; आप की शक्तियों का गुणा कर देता है; आप के प्राक्रम को दृढ़ (मज़बूत) कर देता है, और आप को ईश्वर बना देता है। यह आप की चिन्ता और भय को हर लेता है। और आप निर्भय तथा प्रसन्न चित्त हो जाते हैं।

१०

काम केवल तभी हो पाता है, जब हम इस परिच्छिन्न स्वार्थी अहंकार से पल्ला छुड़ा लेते हैं। जिस क्षण आप इस स्वार्थी अहंकार को प्रतिपादित करते हैं; उसी क्षण काम बिगड़ जाता है। सर्वोत्तम काम वह काम है जो अकर्तृत्व भाव से किया जाता है। त्याग का अर्थ इस परिच्छिन्न, व्यक्तिगत, स्वार्थी अहंकार अर्थात् निजात्मा की इस झूठी भावना से पल्ला छुड़ाना है।

११

त्याग का अर्थ फ़क़ीरी नहीं हैं।

१२

त्याग का अर्थ प्रत्येक पदार्थ को पवित्र बनाना है।

१३

बच्चे को त्याग देने का अर्थ बच्चे से सब सम्बन्धों का तोड़ लेना नहीं है, वरन् बच्चे को तथा पौत्र को ईश्वर समझ लेना है।

१४

प्रत्येक में और सर्व में ईश्वरत्व का भान करना ही वेदान्त के अनुसार त्याग है।

१५

स्वार्थ-पूर्ण और व्यक्तिगत सम्बन्धों को त्याग दो, प्रत्येक में और सर्व में ईश्वरत्व को देखो; प्रत्येक में और सर्व में ईश्वर के दर्शन करो।

१६

व्यावहारिक त्याग का अर्थ अपनी मानसिक दृष्टि के सामने सृष्टि का गोलाकार (खोखलापन) और अपनी वास्तविक आत्मा का स्वरूप (ठोसपन) हर समय रख कर चिन्ता, भय, फिक्र, शीघ्रता और अन्य मानसिक व्याधियों का त्याग देना और फेंक देना है।

१७

आप को करने के लिए कोई कर्तव्य नहीं; आप किसी के प्रति उत्तर-दायी नहीं, आप को चुकाने के ऋण नहीं, आप किसी के प्रति बन्धे हुए नहीं। आप अपनी व्यक्ति को सारे समाज और सारे राष्ट्रों तथा प्रत्येक वस्तु के विरुद्ध प्रतिपादन करो। यही वेदान्ती त्याग है।

१८

प्रत्येक वस्तु आप ही हैं; भूत और प्रेत; देव तथा

देव दूत, पापी तथा ऋषि सब आप ही हैं। इस बात को जान लीजिए, इस को महसूस कीजिए, इस को अनुभव कीजिए, और आप मुक्त हैं। यही त्याग का मार्ग है।

१९

त्याग (क्या है?)—अहंकार-युक्त जीवन का त्याग देना। अवश्य और निस्सन्देह अमर जीवन तो व्यक्तिगत और संकुचित (परिच्छिन्न) जीवन के खो डालने में है।

२०

केवल त्याग ही अमरत्व प्राप्त कराता है।

२१

वेदान्ती त्याग यह है कि आप को सदा त्याग की चट्टान पर ही रहना पड़ेगा, और अपनी स्थिति उत्कर्ष दशा वा श्रेष्ठ पद में दृढ़ता-पूर्वक जमा कर, और जो काम सामने आये, उसके प्रति अपने को पूर्णतः अर्पण करके आप थकेंगे नहीं, कोई भी (मुश्किल से मुश्किल) हो कर्तव्य आप को एक समान हो जायगा।

२२

त्याग का आरंभ सब से निकट और सब से प्रिय वस्तुओं से होना चाहिये, मुझे जिसका त्याग करना आवश्यक है, वह मिथ्या अहंकार है; अर्थात् "मैं यह कर रहा हूं", "मैं कर्ता हूँ और मैं भोक्ता हूं" यह विचार जो मुझ में, इस मिथ्या व्यक्तित्व को उत्पन्न करता है, इसका त्याग करना है।

२३

जंगलों में चले जाना उद्देश्य प्राप्ति का केवल एक साधन मात्र है, यह विश्व विद्यालय में जाने के समान है।

२४

वेदान्तयोग को अनुभव करने के लिए वनों में जाने और असाधारण अभ्यास करने की कोई आवश्यकता नहीं है; जिस समय आप कर्म में निमग्न और प्रवृत्ति में लीन होते हैं, उस समय आप स्वयं शिवके पिता हैं।

२५

त्याग आप को हिमालय के घने जंगलों में जाने को नहीं कहता; त्याग आप को सारे कपड़े उतार डालने को नहीं कहता, त्याग आप को नंगे पांव और नंगे सिर घूमने को नहीं कहता।

२६

त्याग को उदासीन निस्सहायता तथा तितिक्षुक निर्बलता के साथ एक न करना चाहिये; ईश्वर के पवित्र मन्दिर अर्थात् अपने शरीर को बिना रोक टोक के मांसाहारी भेड़ियों को खिला डालना कोई त्याग नहीं है।

२७

अपने आप को सत्य से पृथक और भिन्न समझते रहना और फिर धर्म के नाम पर त्याग आरंभ करना इसका अर्थ जो चीज़ अपनी नहीं उस (पराई वस्तु) पर अधिकार जमा लेना है, यह छल वा गबन है।

२८

प्रेम के द्वारा त्याग से रहित सभ्य मनुष्य केवल अधिक अनुभवी और अधिक बुद्धिमान वनमानुष (वन मानु) हैं।

२९

त्याग के अतिरिक्त और कहीं भी वास्तविक आनन्द

नहीं है; त्याग के बिना न ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है, न प्रार्थना।

३०

ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द हैं। शिक्षा (अनुशीलन-Culture) तथा सदाचार ये उसके बाह्यरूप हैं।

३१

अहंकार-पूर्ण जीवन का छोड़ देना अर्थात् त्याग ही सुन्दरता है।

३२

ओ धार्मिक विवाद तथा दार्शनिक तर्क वितर्क दूर हो जाओ। *मैं यह जानता हूं कि सुन्दरता प्रेम है, और प्रेम* सुन्दरता है। और दोनों ही त्याग हैं।

३३

हृदय की शुद्धता का अर्थ अपने को सांसारिक पदार्थों की आसक्ति से अलग स्वतंत्र रखना है। त्याग (का अर्थ) इससे कम नहीं है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

(६) ध्यान वा समाधि ।

१

ध्यान वा समाधि कामनाओं से ऊपर उठने से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ।

२

कामनाएं एकाग्रता में बाधा डालती हैं और जब तक चित्त-शुद्धि और आत्म-ज्ञान नहीं होते, तब तक वास्तविक एकाग्रता प्राप्त नहीं हो सकती ।

३

वेदान्त की मानसिक एकाग्रता में विशेष बात यह है, कि हमें अपनी असली आत्मा को सूर्यों का सूर्य और प्रकाशों का प्रकाश अनुभव करना होता है ।

४

ज़रा प्रणव का गान करो, ज़रा प्रणव का उच्चारण करो, और उच्चारण करते समय अपना चित्त पूर्णतः इस में लगा दो, अपनी सारी शक्तियों को इस में जोड़ दो; अपना सारा मन इस में संचित करो; इस के अनुभव करने में अपना सारा बल लगा दो ।

५

इस पवित्र अक्षर ॐ का अर्थ है "मैं और वह एक हैं, ॐ वही मैं हूं," ॐ ! ॐ !!

६

ॐ उच्चारते समय यदि हो सके तो अपनी समस्त निर्बलताओं और सारे प्रलोभनों को अपने सामने रक्खो। उन्हें

अपने पाँवों तले कुचल डालो; उन से ऊपर उठो; और विजयी होकर निकलो।

७

शरीर पर के सारे अधिकार को त्याग दो; सारी स्वार्थता को, सारे स्वार्थ-युक्त सम्बन्धों को, मेरे और तेरे के भावों को छोड़ दो; इन से ऊपर उठो।

८

सत्य के लिए तड़पना आत्मा की परम वास्तविकता के आनन्द के लिए लालायित होना, अपने को ऐसी मानसिक स्थिति में रखना ही मुरली को भगवान (कृष्ण) के होटों पर लगाना है।

९

ऐसी मानसिक अवस्था में, ऐसी हृदय की शांति के समय, ऐसे शुद्ध मन से ॐ के मन्त्र का उच्चारण आरम्भ करो। पवित्र प्रणव ॐ का गाना आरम्भ करो।

१०

यह तो मुरली में राग का दम भरना है। अपने सारे जीवन को मुरली बना लो; अपने सारे शरीर को मुरली बना लो। इस को स्वार्थ परता से खाली करके इस में स्वर्गीय श्वास भर दो।

११

ॐ उच्चारण करो, और उच्चारते समय अपने मन के सरोवर में खोज आरम्भ करो। उस बहु-जिह्वा वाले विषधर नाग को ढूँढ निकालो, यह अनगिनत इच्छाएं, सांसारिक अभिलाषाएं और स्वार्थ-पूर्ण प्रवृत्तियां ही उस विषधर नाग के सिर जिह्वा और दान्त हैं। उन को एक २

करके कुचल डालो, उन को अपने पावों तले रौंद डालो। उन को एक १ करके निकाल डालो, उन को अपने वश में कर लो और पवित्र प्रणव ॐ को उच्चारते हुए उन को नष्ट कर डालो।

१२

शरीर और उस के अड़ोस पड़ोस (environments), मन और उस के प्रवर्त्तक (कार्य्य) और सफलता के ख्याल या भय से अपने को ऊपर महसूस करो।

१३

अपने को सर्वव्यापक, परम शक्ति, सूर्यों का सूर्य, कारणत्व से ऊपर नाम रूप जगत् से ऊपर और समस्त महान् लोकों से अभिन्न और परमानन्द स्वरूप मुक्त राम अनुभव करो।

१४

ॐ उच्चारो और एक अथवा अनेक स्वरें जो भी स्वभावतः अथवा स्वतः आप के चित्त में फड़कें, उन्हीं से ॐ का गायन करो।

१५

एक क्षण के वास्ते सब इच्छाओं को परे फेंक दो। ॐ को उच्चारो; न राग, न द्वेष, पूर्णतयः एक समान, और इस से आप का सारा अस्तित्व प्रकाश-स्वरूप हो जाएगा। कर्मके सांसारिक प्रवर्तकों (प्रयोजनों-motives) का निराकरण कर दो; कामनाओं के भूत प्रेतों को उतार कर दूर फेंक दो; अपने सारे काम को पवित्र बना मोह अथवा आसक्ति के रोग से अपने को छुड़ा लो; एक पदार्थ में आसक्ति ही तुम्हें सर्व रूप (परमात्मा) अलग कर डालती है।

१६

हृदय को शुद्ध करो, प्रणव अक्षर का गायन करो; निर्बलता के सब चिन्हों का चुन कर उन्हें अपने भीतर से बाहर करो। सुन्दर चरित्रवान बन कर विजयी निकलो।

१७

जब मनोविकार के राक्षस (वा भयानक सर्प-dragon) का नाश हो जाएगा, तब आप देखेंगे कि आप की इच्छा के पदार्थ आप की उसी प्रकार पूजा करते हैं, जिस प्रकार कि यमुना नदी के भीतर श्रीकृष्ण से कालिया सर्प के मारे जाने पर उस की स्त्रियों ने श्रीकृष्णजी की पूजा की थी।

१८

शरीर से ऊपर उठो। यह समझो और अनुभव करो कि आप अनन्त, परम आत्मा हैं; और तब आप लोभ अथवा मनोविकार से कैसे प्रभावित हो सकते हैं?

१९

समाज, रिवाज़ लोकाचार क़ानून-नियम, व्यवस्था, छिद्रान्वेषण और समालोचनाएं आप की सच्ची आत्मा को नहीं छू सकतीं। ऐसा अनुभव करो, उस (समाज इत्यादि के भ्रम) को फेंक दो, उस को त्याग दो, वह आप हैं ही नहीं। ऐसा अर्थ ॐ का करो और थकान के प्रत्येक अवसर पर इस ॐ का उच्चारण करो।

२०

यह अनुभव करो कि आप पूर्ण आनन्द हो, आनन्द हो, आनन्द हो।

२१

प्रति दिन रात इस सत्य का अभ्यास (चिन्तवन) करो कि संसार का सब मत और समाज केवल आप का अपना ही संकल्प है; और आप ही वह असली शक्ति हैं कि संपूर्ण संसार जिसका सांस अथवा छायामात्र है।

२२

भोजन का जो ग्रास (कौर) आप के मुँह में जाता है उस के साथ साथ आपको इस आशय का चिन्तवन करना चाहिये कि यह कौर बाह्य पृथ्वी का प्रति निधि रूप है और मैं यहां अपने भीतर सारे ब्रह्माण्ड को लीन कर रहा हूँ।

२३

प्रत्येक रात अथवा मध्याह्न के समय सोने से पहिले-जब आंख बन्द होने लगे-तब अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर लीजिये कि जागने पर आप अपने को वेदान्त के सत्य की साक्षात् मूर्ति पायेंगे।

२४

जिस शरीर को आप अपना बतलाते हैं, यदि वह अस्वस्थ हो तो इस को एक ओर पड़ा रहने दो, इस का विचार मत करो; समझो वा भान करो कि आप स्वास्थ्य की स्वयं मूर्ति हैं; पूर्ण स्वास्थ आप का है; इस को महसूस करो। शरीर फौरन् स्वयं ही चंगा हो जायगा।

२५

प्रातः काल जब आप ॐ (प्रणव) का जाप करो, तो इस के अनुसार जीवन व्यतीत करने का और इस को व्यवहार में लाने का दृढ़ और पक्का निश्चय करो। जो कोई भी काम हाथ में लो उस के करने से पहिले ही सावधान हो जाओ।

२६

पूर्ण रूप से वायु को मुँह के द्वारा भीतर खींचो और अपने अपने नथनों से बाहर निकालो। इस क्रिया का अभ्यास दृढ़ता पूर्वक किया जाना चाहिये और तुम देखोगे कि कितना अद्भुत आप को यह प्रसन्न कर देता है।

२७.

राम आप को अत्यन्त स्वाभाविक प्राणायाम की सलाह देता है। श्वास, श्वास, श्वास लो। गहरा साँस लेने से कोष्ट (आमाशय, stomach) के नीचे के हिस्से में वायु भर जायगी और भीतर सारी नली में भी जायगी। इस प्रकार से आप तत्क्षण सुस्ती से मुक्त हो जाओगे और आप की शक्तियां सर्वोत्तम रूप से संचित हो जायंगी।

(७) आत्मानुभव।

१

आत्मानुभव आप को वाह्य प्रभावों से मुक्त कर देता है। यह आप को अपने सहारे खड़ा कर देता है।

२

सब पापों से बचने का और सब प्रलोभनों से ऊपर रहने का एक मात्र उपाय अपने सत्य स्वरूप का अनुभव करना है।

३

जब तक आप इस वैभव और ऐश्वर्य को, जो आप को मुग्ध और आकर्षित किए हुए है, छोड़ न दोगे, तब तक आप पाशविक मनोविकारों का विरोध न कर सकोगे।

४

जिस समय आप वह (अपना स्वरूप) अनुभव कर लेते हो, तब आप सब मनोविकारों से ऊपर खड़े होते हो और साथ ही पूर्णतया मुक्त और परमानन्द से परिपूर्ण होते हो; और वही स्वर्ग है।

५

आत्मानुभव कोई (वाहर से) प्राप्त किए जाने वाला पदार्थ नहीं। आप को ईश्वर-दर्शन की प्राप्ति के लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। केवल अपने इरद गिरद जो आप ने इच्छाओं के अन्धकारमय कोकून बना रखे हैं, उनको उधेड़ डालना है।

६

अपने ईश्वरत्व को प्रतिपादन करो; परिच्छिन्न-

आत्मा पर इस प्रकार खाक डाल दो (या उसे बिल्कुल ऐसा भुला दो कि) जैसे यह कभी हुआ ही नहीं। जब यह (परिच्छिन्नात्मा का) छोटा बुलबुला फूट जाता है, तब यह अपने को महासागर पाता है। आपही सम्पूर्ण, अनन्त और सर्वस्वरूप हो।

७

आप अपने प्राचीन (असली) तेज से जगमगाइये। ओ पूर्ण पुरुष! तेरे वास्ते न कोई कर्तव्य है, न कर्म है, न करने का कोई काम है। सारी प्रकृति सांस रोके (दम घुटे) तेरी प्रतीक्षा कर रही है।

८

यदि मानवी अथवा प्रायः पाशवी भावनाओं को धो डाला जाय, तो उनकी जगह दिव्य भावनाएँ उमंडने लगती हैं।

९

यदि आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं तो इस को सब प्रकार के शोरोगुल में बल्कि सब प्रकार की व्याधियों की अग्नि में अनुभव कीजिये। इस संसार में आप किसी प्रकार भी, कभी भी, उस अवस्था में अपने को नहीं पा सकते जहां बाहर से न शोर हो और न कोई असुविधा हो।

१०

सच तो यह है कि जितनी ही अति कठिन परिस्थिति होती है, जितना ही अति पीडा कर अड़ोस पड़ोस (घिराव) होता है, उतने ही अति बलिष्ट वे लोग होते हैं कि जो परिस्थितियों से निकल आते हैं। इस कारण इन समस्त बाह्य कष्टों और चिन्ताओं का स्वागत करो। इन परिस्थि-

तियों में भी वेदान्त को आचरण में लाओ। और जब आप वेदान्त का जीवन व्यतीत करोगे, तब आप देखोगे कि सारे अड़ोस पड़ोस और परिस्थितियां आप के वश में हो जायेंगी, आप के उपयोगी (वा अधीन) हो जायेंगी, और आप उन के स्वामी बन जाओगे।

११

चाहे आप बड़े हों या छोटे, चाहे आप ऊँचे स्थित हो या अति नीचे, इस की तृणवत् परवा मत करो; अपने पावों पर खड़े हो।

(८) राम ।

१

ईश्वर से पहिले 'मैं हूँ' था।

२

सदा पृथ्वी के होने से भी पहिले; नित्य समुन्द्र की उत्पत्ति से पाहिले; अथवा घास के नरम बालों से पहिले; अथवा वृक्षों के सुन्दर अंगों से पहिले; अथवा मेरी टहनियों के ताज़ा रंगीन फलों से पहिले, मैं था और तुम्हारा आत्मा (मन) मुझमें था।

३

किस को मैं धन्यवाद दूँ;
किस की ओर मैं मुडकर देखूँ;
जब पूर्ण परमानन्द,
जब अपरमित प्रकाश
मुझ में भी व्यक्त है (प्रगट है)।

४

केवल एक ही तत्व है, और वह तत्व मैं हूँ। ॐ ! ॐ !! ॐ!!!

५

मैं सत्य हूँ; मैं रूप (शरीर) को सम्मानित करवाने के वास्ते आत्महत्या नहीं सहूंगा।

६

सारा विश्व केवल मेरा ही संकल्प है।

७

विश्व मेरा शरीर है; वायु और पृथ्वी मेरे वस्त्र और पादुकाएँ (जूतियां) हैं।

८

आकाश का अर्ध मण्डल मेरा प्याला है, और उस में झलकता हुआ प्रकाश मेरी शराब है।

९

विश्व मेरे आत्मा की ही मूर्ति होने के कारण साक्षात् मधुर्ता का स्वरूप है। किस को मैं दोष दूं? किस को मैं बुरा कहूँ? अहो! प्रसन्नता! यह सब कुछ मैं ही हूँ।

१०

संसार मेरा शरीर है, और जो कोई भी यह कह सकता है कि समस्त विश्व मेरा शरीर है। वह आगमन से मुक्त है।

११

प्र०-क्या ईश्वर दूत अथवा पैगम्बर का काम करते हैं?

उ०-नहीं, यह मेरी महिमा के खिलाफ़ है; मैं स्वयं परमात्मा हूँ; और इसी प्रकार आप भी हो। शरीर मेरा वाहन (सवारी) है।

१२

मुझे किसी चीज़ की अभिलाषा नहीं। मुझे आवश्यकताएं नहीं, भय नहीं, आशा नहीं, ज़िम्मेदारी नहीं।

१३

मैं धर्म-परिवर्तन करके (या मुरीद बना कर) अनुयायी इकट्ठे करना नहीं चाहता; मैं केवल सत्य में रहता हूँ (वा मैं केवल सत्य का आचरण करता हूँ)।

१४

राम का मिशिन (mission उद्देश्य) बुद्ध, मोहम्मद, ईसा तथा अन्य नबियों या अवतारों के समान करोड़ों अनुयायी बनाना नहीं है, वरन् स्वयं राम प्रत्येक पुरुष, स्त्री और

बालक में उत्पन्न करना, आह्वान करना (या प्रवुद्ध करना) अथवा प्रगट करना है । इस शरीर को रौंद डालो; इस व्यक्तित्व को खा डालो; मुझे पीस डालो, हज़म कर डालो और पचा डालो । तभी और केवल तभी आप राम के प्रति न्याय करोगे ।

१५

चाहे आप अंगरेज़ हों, चाहे आप अमेरिकन हों, चाहे आप मुसलमान हों, बुद्ध हों अथवा हिन्दू हों, अथवा कोई भी क्यों न हों, आप राम की (अपनी) आत्मा हैं । आप उसकी आत्मा की भी आत्मा हैं ।

१६

मेरा मत प्रचार के लिए नहीं है, "मेरी सेवा के लिए" वा मेरे निर्वाह करने के लिए है ।

१७

यदि कोई मनुष्य मुझे अपने मत को एक शब्द में प्रगट करने की आज्ञा दे तो मैं कहूंगा कि वह "आत्म-विश्वास" वा "आत्म-ज्ञान" है ।

१८

विशाल संसार मेरा घर है, और उपकार करना मेरा धर्म है ।

१९

मेरे धर्म के आवश्यक और मुख्य तत्व कवि (Goethe) (गोएथ) के शब्दों में इस प्रकार कहे जा सकते हैं:—

मैं आप को बतलाता हूं कि मनुष्य का परम व्यवसाय (वृत्ति) क्या है ।

मुझ से पहिले संसार का अस्तित्व नहीं था, यह मेरी रचना है ।

यह मैं ही था जिस ने सूर्य को सागर से उदय किया।

चन्द्रमा ने अपना परिवर्तन-शील मार्ग मेरे साथ ही चलना आरंभ किया।

२०

मैं तो केवल वाह्य-दृश्य का साक्षी रहता हूं, उन में उलझता (फंसता) कभी भी नहीं, सदा उन से ऊपर रहता हूं।

यह सारे नाम रूप दृश्य केवल अविरोध स्फुरण हैं, चक्र की ऊपर नीचे गति हैं, पांव का ऊपर उठाना और नीचे रखना है।

२१

असल में डरने की कोई वात नहीं है। चारों ओर, सारे भविष्य काल में, सारे देश (अर्थात् सब दिशा, काल और देश में) एक ही परमात्मा विद्यमान है, और वह मेरा ही स्वरूप है।

तो फिर मुझे डर किस का हो?

२२

जब बुखार दर्शन देता है, तो मैं त्योरी नहीं चढ़ाता (वा क्षुभित नहीं होता)। मैं उस का मित्रवत स्वागत करता हूँ, और (उस बुख़ार की दशा में) वह आध्यात्मिक तत्व जिन का भेद अन्य दशा में कभी नहीं खुल सकता था, मुझ में चमक (झलक मार) जाते हैं।

२३

ओ परमानन्द के महासागर! तू क्रूरता पूर्वक तरंगित हो, लहरें ले, और तूफ़ान वरपा कर, पृथ्वी और आकाश को बराबर करदे। सब विचारों और चिन्ताओं को गहरा

डुबादे, टुकड़े टुकड़े करदे और इधर उधर फेंक दे। अरे! इन से मुझे क्या प्रयोजन ?

२४

हटो ऐ संकल्पो और इच्छाओं! जिनका सम्बन्ध इस संसार की क्षणिक, क्षण-भंगुर प्रशंसा अथवा धन से है। इस शरीर की दशा कैसी भी हो, मेरे से उसका वास्ता नहीं; शरीर सारे मेरे हैं।

२५

मैं ने यह निश्चय वा संकल्प कर लिया है कि अपना ईश्वरत्व वा तुम्हारा ईश्वरत्व आपके हृदय में कड़-कड़ा दूं वा गरजा दूं, और उसे प्रत्येक कर्म और व्यापार से घोषित कर दूं।

२६

मैं शाहंशाह (सम्राज्) राम हूं; जिसका सिंहासन आप का निज हृदय है; जब मैंने वेदों द्वारा प्रचार किया, जब मैंने कुरुक्षेत्र, जेरूसलेम और मक्का में उपदेश किया, तब मुझे लोगोंने ग़लत समझा। मैं अपनी वाणी (आवाज़) फिर से उठाता हूं। मेरी वाणी तुम्हारी वाणी है, तत्त्वमसि "तू वही है," जो कुछ तू देखता है वह सब तू ही है। कोई शक्ति इसमें बाधा नहीं डाल सकती। राजा, दानव अथवा देवता गण कोई इसके विरुद्ध खड़े नहीं होसकते। मूर्च्छित (व्याकुल) मत हो। मेरा सिर तुम्हारा सिर है, चाहो तो काट डालो, परन्तु इसकी जगह एक सहस्र सिर और उत्पन्न होजाएंगे।

२७

तेरी छाती में धड़कने वाला, तेरी आँखों में देखने वाला,

तेरी नाड़ी में फड़कने वाला, फूलों में मुस्कराने वाला, बिजली में हसने वाला, नदियों में गरजने वाला, और पहाड़ों में शान्त है राम।

२८

ब्राह्मनत्व को दूर करो, स्वामीपने को जला दो। अपने से पृथक वा विलक्षण करनेवाली उपाधियों और मान-पदों को सागर में गिरा दो। प्यारे ! राम तो तुम से अभिन्न है। आप कोई भी हो, विद्यावान् अथवा अविद्यावान (ज्ञानी अथवा अज्ञानी) धनी अथवा निर्धन, पुरुष अथवा स्त्री, ऋषि अथवा पापी, ईसा अथवा जूडास, कृष्ण अथवा गोपी राम आप का अपना आप है।

२९

ईसाई, हिन्दू, फारसी. आर्य-समाजी, सिक्ख मुसलमान और वे लोग जिनके पुट्ठे (Muscles) हड्डियां तथा मस्तिष्क मेरी प्यारी इष्ट-देवी भारत भूमि के अन्न और नमक खाने से बने हैं, वे मेरे भाई हैं, नहीं नहीं वे मेरा अपना आप हैं। उनसे कह दो कि मैं उनका हूं ! मैं सबको हृदय से लगाता (सब का समावेश करता) हूं। किसी को अलग नहीं करता। मैं प्रेम रूप हूं। प्रकाश के समान प्रेम प्रत्येक पदार्थ को, सबको प्रकाश की ज्योतियों से मंढ देता है। ठीक और अवश्य ही मैं प्रेम के प्रताप की बाढ़ हूं। मैं सब से प्रेम करता हूं।

३०

अरी हिमालय की बर्फ़ ! तेरा स्वामी तुझे सत्य (प्रकाश) के प्रति अपनी शुद्धता और दृढ़ता को बनाए रखने की आज्ञा देता है। द्वैत भाव से भरा हुआ जल नीचे मैदानों में तू कभी भी न भेजियो।

३१

मैं सर्वोपरि निष्कृष्ट हूं; सर्वोपरि श्रेष्ट हूं। मेरे लिए न कोई सर्व निकृष्ट है, न सर्व श्रेष्ट है। जहां कहीं मनुष्य की दृष्टि पड़ती है, वहीं मैं हूं। जीसस (ईसा) में मैं प्रगट हुआ। मुहोम्मद में मैं ने ही अपने को प्रगट किया। संसार मे सब से अधिक प्रसिद्ध मशहूर आदमी मैं हूं, और सब से अधिक बदनाम, कलंकित, और अधम मैं हूं; मैं सर्वरूप हूं, सब हूं।

३२

अहा! मैं कितना सुन्दर हूँ। मैं बिजली में चमकता हूँ, मैं बादल में गरजता हूँ; मैं पत्तियों में सर सराता हूँ, मैं पवन में सन सनाता हूँ, मैं कल्लोलाकुल (तरंगित) सागर में लुढ़कता हूँ; मित्र मैं हूँ; शत्रु मैं हूँ।

३३

ओहो, यह कैसा आश्चर्यों का आश्चर्य है कि सब पदार्थों में, सब प्रत्यक्ष व्यक्तियों में सारे प्रत्यक्ष रूपों में एक ही अनन्त शक्ति व्यापक है। अहो। यह मैं हूँ; मैं ही वह अनन्त (शक्ति) हूँ कि जो महान् प्रसिद्ध वक्ताओं के शरीरों में व्यापक है। अहा! कैसा आनन्द है! कि मैं ही अनन्त स्वरूप हूँ और यह शरीर नहीं हूँ।

३४

ऐसा एक भी हीरा नहीं है, ऐसा एक भी सूर्य अथवा नक्षत्र नहीं है कि जो चमकता रहा हो, पर उस की चमक मेरे कारण न हो। सारे आकाश मंडल के नक्षत्रों की चमक मेरे कारण है।

इच्छित पदार्थों का समस्त आकर्षक स्वभाव और उन की सारी शोभा (कान्ति) मेरे ही कारण है।

३५

यह मेरे गौरव के प्रतिकूल और मेरी ओर से मेरा पतन होगा कि पहले तो इन पदार्थों को मैं शोभा और महिमा उधार दूं; और फिर उन्हीं को ढूंढ़ता फिरूं। यह मेरी शान के विरुद्ध (खिलाफ़) है। मेरा इतना पतन कदापि नहीं हो सकता। नहीं मैं उन के द्वार पर भिक्षा मांगने के लिए कभी नहीं जा सकता।

३६

ओ क़ब्र ! कहां है तेरी विजय ?
ऐ मौत ! कहां है तेरा डंक ?

३७

मैं सम्राटों का सम्राट हूं। मैं ही वह हूँ जो इस संसार में सारे राजाओं के रूप में प्रगट होता है।

३८

मुझ में ही सारा संसार रहता सहता, चलता फिरता और जीवित है। सर्वत्र मेरी ही इच्छा पूर्ण की जा रही है।

३९

शरीर अनेक हैं, आत्मा एक है;
और परमात्मा मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है।
मैं ही कर्म कर्ता (परिश्रमी), साक्षी, न्यायाधीश,
कड़ा छिद्रान्वेषक (और) वाह वा करने वाला हूं।
मेरे लिए प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है,
बन्धन, परिच्छिन्नता और दोष मेरी दृष्टि में नहीं आते।

मुक्त स्वतन्त्र मैं हूं, और अन्य लोग भी स्वतन्त्र हैं;
ईश्वर, ईश्वर हूँ मैं, तुम और वह।
न ऋण है न कर्तव्य, न धोका है न डर,
मैं ही अभी और यहां परमात्मा स्वरूप हूं।

४०

कहां है वह तलवार जो मुझे मारडाल सके? कहां है वह शस्त्र जो मुझे घायल कर सके। कहां है वह विपत्ति जो मेरी प्रसन्नता को बिगाड़ सके? कहां है वह दुःख वा शोक जो मेरे सुख में बाधा डाल सके? अमर, कल आज और सदा एक रूप, शुद्ध, पवित्रों का पवित्र, विश्व का स्वामी, वह मैं हूं।

४१

मैं मर नहीं सकता, मृत्यु चाहे सदा,
मुझ ताना रूप में बाना बुनती रहे।
मैं कभी जन्मा नहीं था, तथापि मेरे श्वास के जन्म,
उतने ही अधिक हैं जितनी निद्रा-रहित सागर में लहरें

४२

कोई पाप नहीं, शोक नहीं, कष्ट (दुःख) नहीं,
अपनी सुखी (प्रसन्न) आत्मा में सुरक्षित (स्थित) हूं।
मेरे भय भाग गए; मेरी शंकाएं कट गईं।
मेरी विजय प्राप्ति का दिन आ गया।

४३

मेरे लिए मेरा आत्मा ही मेरा साम्राज्य है,
(क्योंकि) इस में मुझे अति पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है।
कोई सांसारिक लहर मेरे (निश्चल) चित्त को आन्दोलित नहीं कर सकती।

इस लिए (इन लहरों से) मेरे को न कोई लाभ है, न
मेरे लिए हानि।

मुझे शत्रु से भय नहीं, मुझे मित्र से घृणा नहीं;
मुझे मौत का डर नहीं, मुझे अन्त की चिन्ता नहीं।

४४

अरे, चोर! अरे निन्दक, प्यारे डाकू!
आओ, स्वागत, शीघ्र! अरे डरो मत।
मेरा अपना आप तो तेरा है, और तेरा मेरा है।
हां यदि तुम (चाहो), तो कोई चिन्ता नहीं, कृपया
लेजाओ इन वस्तुओं को जिन को तुम मेरी समझते हो।
हां यदि तुम यह उचित समझते हो,
एक ही चोट से इस देह को मार डालो, या इस के टुकड़े
टुकड़े करके काट डालो।
शरीर को ले जाओ और जो कुछ तुम कर सको।
नाम और यश को लेकर चल भागो!
ले जाओ! चले जाओ!
तथापि यदि तुम ज़रा पलट कर देखो।
तो मैं ही अकेला, सुरक्षित और स्वस्थ रहता हूँ!
नमस्कार! अरे, प्यारे! नमस्कार!

४५

मौत के नाम राम का अन्तिम संदेश।

ऐ मौत! बेशक उड़ादे मेरे इस एक जिस्म (तन) को।
मेरे और तन ही मुझे कुछ कम नहीं। केवल चान्द की
किरणें चान्दी की तारें पहिन कर चैन से काट सकता हूँ।
पहाड़ी नदी नालों के वेष में गीत गाता फिरूँगा, बहेर-
मव्वाज (समुद्र की तरंगों) के लिबास (वस्त्र) में मैं ही
लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे-खुशखराम (मन्द २ पवन)

और नसीमे-मस्ताना-गाम (मस्तचाल समीर) हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी (घूमने फिरने की मूर्ति हर वक्त रवानी (चलने फिरने) में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा; मुरझाते पौदों को ताज़ा किया, गुलों (फूलों) को हंसाया, बुलबुल को रुलाया, दर्वाज़ों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आँसू पूंछा, किसी का घूंघट उड़ाया, इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़, वह गया, वह गया, न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

(६) आनन्द की फुहार (छींटें)

१

सभा-समाजों वा समुदाय पर भरोसा मत करो। यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह भीतर से प्रबल हो।

२

दूसरों को प्रसन्न करने के उद्देश से कोई काम मत करो। वही वीर है जो मुख से 'नहीं' कह सकता है; आपके चरित्र का बल और वीरता आपके 'नहीं' कह देने की शक्ति से प्रगट होती है।

३

इच्छा एक बीमारी है, यह आप को दुविधा में रखती है।

४

राम दो मुख्य बातें आपके ध्यान में लाता है :—

(१) परिछिन्नात्मा का निषेध (denial of self).

(२) शुद्ध आत्मा का प्रमाणी-करण (प्रतिपादन) (positive assertion of Real Self).

५

पूर्ण स्वास्थ्य (निरोगता) और प्रबल प्रवृत्ति का रहस्य चित्त को सदा हलका और प्रसन्न रखना है, और उसे कभी भी थका मान्दा, कभी भी जल्दबाज़, कभी भी भय शोक व चिन्ता से लदा हुआ रखना नहीं है।

६

लोकाचार के दलदल में फंसे रहना, और अपने को रीति-रिवाज की धारा में बहने देना, और किसी जड़ बोझे की तरह नाम रूप के कूँए में डूब जाना, सम्पति की तलैया

में फंसे रहना और उस समय को जो कि ईश्वर की वस्तु होनी चाहिये रुपया कमाने में लगाना और फिर भी इसे "भलाई करना" कहना, क्या यह जड़ता (अकर्मण्यता) नहीं है ?

७

जब ईश्वर स्वरूप की दृष्टि से देखा जाय तो सारा संसार सुन्दरता का बहाव, प्रसन्नता का सूचक और आनन्द की वर्षा हो जाता है।

८

चाहे कोई मनुष्य अपने अन्तःहृदय में किसी भी चीज़ को सत्य या विश्वास का पात्र माने, अवश्य ही वह (मनुष्य) उस पदार्थ से त्यागा जाएगा वा धोखा खाएगा। यह एक ऐसा विधान है जो गुरुत्वाकर्षण के विधान से भी अधिक क्रूर है।

९

धन्य हैं वे लोग जो समाचार पत्रों को नहीं पढ़ते, क्योंकि इससे वे प्रकृति के और प्रकृति द्वारा ईश्वर के (सीधा) दर्शन कर सकेंगे।

१०

यदि सब लोग तुम्हारी भी प्रशंसा करने लगें तो तुम्हारे लिए शोक है, क्योंकि इसी प्रकार इनके पूर्वजों ने झूठे पैग़म्बरों की प्रशंसा की थी।

११

जीवन तो इस शरीर के पिंजड़े में बन्द हंस के परों का केवल फड़ फड़ाना है।

१२

जब आप अपने को उदासी व खिन्नावस्था में पाओ, तो राम का उपदेश है कि आप अपने आलस्य को तत्काल त्याग

दो, अपनी पुस्तक को परे फेंक दो, अपने पाँओं पर खड़े हो (अर्थात् अपने आश्रय स्थित हो), खुली हवा में टहलो और शीघ्र २ चलो ।

१३

ऐसी मित्रता, जिस में हृदयों का मेल मिलाप नहीं; वह भड़ाक आवाज़ करने वाले द्रव्यसमुदाय (mixture) से भी अधिक बुरी सिद्ध होती है; उस का परिणाम ज़ोर की फूट है ।

१४

यदि आप को कोई बात किसी मित्र के विषय अयोग्य मालूम हुई हो, तो उसे भूल जाओ; यदि आप को उस के सम्बन्ध में कोई अच्छी बात मालूम हुई हो, तो वह उसे कह दो ।

१५

ईश्वर व्यक्तियोंका सम्मान कर्त्ता नहीं है, और न भाग्य का भूगोल से नाता है ।

१६

ऐसे ज्ञान का प्राप्त करना कि जिसे हम आचरण में नहीं ला सकते, वह (वास्तव में) आध्यात्मिक क़ब्ज़ अथवा मानसिक अजीर्ण है ।

१७

सच्ची शिक्षा का अर्थ पदार्थों को ईश्वर की दृष्टि से देखना है ।

१८

छिद्रान्वेषण परमात्मा की काट छांट की प्रक्रिया है जो हमें अधिक सुन्दर बनने में सहायता देती है ।

१९

यह सदा याद रक्खो कि ईर्षा और द्वेष और छिद्रान्वेषण और दोषारोपण वा निन्दा करनेके विचार अथवा ऐसे विचार जिन में ईर्षा और घृणा की गन्ध हो, इन को प्रगट करने से आप वैसे ही विचार अपनी ओर बुलाते हैं। जब कभी आप अपने भाई की आँखों में तिल देख रहे हैं, तो (उसी समय) आप अपनी आँख में भी लकड़ी का लट्ठा डाल रहे हैं।

२०

छिद्रान्वेषण की क़ैंची से जब आप की भेंट हो, तो आप झट अपने भीतर दृष्टि डाल कर देखो कि वहां क्या हो रहा है।

२१

सब से परम उत्कृष्ट छिद्रान्वेषण यह है कि लोगों को आप जो कुछ बाहर से अनुभव कराना चाहते हैं वही उन को आप (उन्हीं के) भीतर से करा दें।

२२

किसी विशेष बात में अपने मित्र में क्षुद्र त्रुटियों के देख लेने से हाय यह कैसी उग्र वृत्ति हम में उठ आती है कि उस मित्र के उत्तम गुणों (लक्षणों) का भी हम सत्कार करना छोड़ देते हैं।

२३

जो शक्ति हम दूसरों के (स्वभावों पर) निर्णय देने में नष्ट करते हैं, वही ठीक हमें अपने आदर्श के अनुसार रहने में लगानी आवश्यक है।

२४

यदि आप की बुद्धि प्राचीन काल के मृत आचार्य्यों की उक्तियों, कल्पनाओं और भ्रमों वा तरंगों की प्रशंसा नहीं

करती, तो (संसार की दृष्टि में) आप पतित हैं; प्रत्येक शरीर आप का ठीक विरोधी हो जायगा।

२५

जिस क्षण हम संसार के सुधारक के रूप में खड़े होते हैं, उसी क्षण हम संसार के बिगाड़ने वाले बन जाते हैं।

२६

दूसरों की दृष्टि से अपने को देखने का स्वभाव वृथा अहंकार और आत्म-श्लाघा (खुदनुमाई) कहलाता है।

२७

लोग विधियों और आज्ञाओं के बोझ तले अपने असली स्वरूप को खो बैठे हैं; और अपने को केवल नाम और रूप मात्र समझते हैं।

२८

अपने से बाहर मत भटको। अपने केन्द्र पर रहो।

२९

अपना केन्द्र अपने से बाहर मत रक्खो; यह आप का पतन कर देगा। अपने में अपना पूर्ण विश्वास रक्खो, अपने केन्द्र पर डटे रहो; कोई चीज़ तुम्हें हिला तक न सकेगी।

३०

सत्य को कुचल कर यदि मिट्टी में मिला दिया जाय, तौ भी उभर आयगा, क्योंकि ईश्वर के अनन्त वर्ष (समय) उस सत्य के ही होते हैं।

३१

ईसामसीह ने केवल ग्यारह (मनुष्यों) को उपदेश दिया था, परन्तु वे शब्द वायुमण्डल ने बटोर लिए, आकाश ने संचय कर लिए, और आज उन को करोड़ों आदमी पढ़ते हैं।

३२

बुरे (अपवित्र) विचार, सांसारिक इच्छाएँ तो मिथ्या शरीर और मिथ्या मन से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थ हैं, और अन्धकार की वस्तुएँ है।

३३

सांसारिक बुद्धिमत्ता अज्ञानता का एक बहाना है।

३४

बालक तो पिता का भी पिता होता है।

३५

आप के निजानुभव से अधिक योग्य शिक्षक और कोई नहीं है।

३६

कवि को प्रेरणा उसी समय होती है, जब कि वह परिच्छिन्नात्मा अथवा अहंकार के ख्याल से ऊपर उठा होता है, और जब उस को यह ख्याल नहीं होता कि "मैं कविता लिख रहा हूँ"

३७

ईश्वर में निवास करो, और सब ठीक है; दूसरों का निवास भी ईश्वर में कराओ, और सब अच्छा ही होगा। इस सत्य पर विश्वास करो, तुम्हारा उद्धार हो जायगा; इस का विरोध करो, तो तुम्हें कष्ट मिलेगा।

३८

जीवन और मृत्यु तो सांस द्वारा हवा को भीतर खैंचने और बाहर निकालने के समान हैं।

३९

जिस समय हक्सले (Huxley), ऐतिहासिकों का

हक्सले नहीं रहता, वरन् सर्व रूप होता है, तब वह वैज्ञानिक हक्सले होजाता है।

४०

इस संसार में जिस वस्तु से आप का सामना हो, वह अटकाने वाले रोड़े की जगह (आत्मानुभव या ऊपर चढ़ने की) सीढ़ी हो जाना चाहिये। अटकाने वाले रोड़े को सीढ़ी का पत्थर बना लो।

४१

जो मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक अपने (अहंकार) को सूली पर चढ़ा देता है, उस के लिए यह संसार स्वर्गीय उपवन है। बाक़ी सब के लिए यह लुप्त स्वर्ग है।

४२

ठीक जौ और गेहूं के भाव घटने बढ़ने के समान मनुष्य का ज़िक्र किया जाता है; इस से ऊपर उठो। आप का कोई मूल्य नहीं लगा सकता।

४३

ईश्वर-प्रेरणा के आनन्द-भवन का प्रवेश-द्वार हृदय है, परन्तु प्रस्थान-द्वार सिर (मस्तिष्क) है।

४४

त्याग दो ! त्याग दो भ्रान्ति को (मोह माया को),
जागो ! जागो !! स्वतन्त्र बनो।
मुक्ति ! मुक्ति !! मुक्ति !!!

४५

WANTED

Reformers,
Not of others

But of themselves.
Who have won
Not University distinctions,
But victory over the local self.
Age :—the youth of Divine Joy.
Salary :— God-head.
Apply sharp
With no begging solicitations
But commanding decision
To the Director of the Universe,
Your Own Self.
Om ! Om ! Om !!!

ज़रूरत है (आवश्यकता है)

सुधारकों की.
दूसरों के सुधारकों की नहीं,
किन्तु अपने निज के, सुधारकों की।
विश्व विद्यालय के उपाधिधारियों की नहीं,
किन्तु परिच्छिन्न भाव के विजेताओं की।
आयुः—दिव्यानन्द भरा तारुण्य
वेतनः—ईश्वरत्व
शीघ्र निवेदन करो,
विश्व नियन्ता से,
अर्थात् अपने ही आत्मा से,
दासोऽहं भरी दीनता से नहीं,
किन्तु निश्चयात्मक निर्णय व अधिकार के साथ,
ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

४६

जब कोई मुनि (चिन्तक), तत्वज्ञानी, कवि, वैज्ञानिक या अन्य प्रकार का कार्यकर्ता समाधी की अवस्था से एक ताल होजाता है, और त्याग की शिखर पर यहां तक चढ़ जाता है कि उस में व्यक्तित्व के चिन्ह का लेशमात्र भी नहीं रहता और उसे वेदान्त का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, तभी और केवल तभी वह ईश्वर जो कि गायकों का स्वामी वा गुरू है, उस के शरीर और मन का बाजा अपने हाथों में लेता है, और उस में से विशाल लहरें, मधुर तालें और उत्कृष्ट तानें निकालता है।

Peace immortal falls as rain drops,
Nectar is pouring in musical rain ;
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

My clouds of glory, they march so gaily !
The worlds as diamonds drop from them.
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

My balmy breath, the breeze of Law,
Blows beautiful ! beautiful !!
Some objects swing and sway like twigs.
And others like the dew-drops fall ;
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

My graceful Light, a sea of white ;
An ocean of milk, it undulates.
It ripples softly, seftly, softly ;
And then it beats out worlds of spray.

I shower forth the stars as spray.
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

आती अमृत शान्ति मेघ के बुन्दों के सम,
झड़ी सुरीली लगी सुधा रस बरसे अनुपम,
रिम झिम ! रिम झिम ! रिम झिम !!!

मेरी द्युति के मेघ चले हैं सुन्दर कैसे ।
हैं उन से गिर रहे लोक सब हीरों ऐसे ।
रिमझिम ! रिमझिम !! रिमझिम !!!

मेरी सांस सुगन्ध नीति की सुखद बयारी।
है यह कितनी सुन्दर अनुपम बहने वारी ॥
मृदुशाखासम वस्तु फूल, झुक झूमे कोई ।
ओस बिन्दु सम गिरे टूट कर भूमे कोई ॥
रिमझिम ! रिमझिम !! रिमझिम !!!

मेरी शोभन-प्रभा श्वेत सागर-सी सो है ।
क्षीर पयोनिधि लहर लेत तारंगित होवे ॥
मन्द मन्द जो मंजु तरंगे उसमें आतीं ।
जल-फुहार-संसार मार बाहर कर जातीं ॥
तारागण की झडी नीर कण सम मैं करता ।
रिमझिम रिमझिम मेंह बड़ा सुखदायी होता ।

'Are you afraid ? Afraid of what ?
Of God ? Nonsense ;
Of Man ? Cowardice ;
Of the elements ? Dare them ;

Of yourself ? Know thyself ;

Say, I am God.

क्या डरते हो ? किस से डरते हो ?
क्या ईश्वर से ? तो मूर्ख हो ।
क्या मनुष्य से ? तो कायर हो ।
क्या (पंच) भूतों से ? उन का सामना करो ।
क्या अपने आप से ? तो अपने को जानो ।
कहदो "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ईश्वर हूं)

इति ।

परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी महाराज

के

हिन्दी भाषा में समग्र उपदेश व लेख जो २८ भागों में विभक्त हैं, और जो चार २ भागोंके खण्डोंमें भी मिल सकते हैं।

मूल्य समग्र भागों का।

साधारण संस्करण कागज़ी जिल्द	१३)
विशेष संस्करण कपड़े की जिल्द	२०)
चार २ भागों के एक खंड का मूल्य	
साधारण संस्करण कागज़ी जिल्द	२)
विशेष संस्करण कपड़े की जिल्द	३)

मूल्य फुटकर भाग साधारण सं० ॥=) विशेष सं० ॥|=)

सब डाक व पैकिट खर्च ग्राहक के ज़िम्मे होगा।

उक्त २८ भागों की विषय-सूची नीचे दी जाती है, और जिस व्याख्यान का अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा से हुआ है वहां २ उस का अंग्रेज़ी भाषा में नाम भी साथ २ दे दिया है :—

'पहिला भागः' (१) आनन्द (Happiness within) (२) आत्म-विकास (Expansion ef self). (३) उपासना. (४) वार्तालाप।

'दूसरा भागः'—(१) संक्षिप्त जीवन चरित्र (२) सांत में अनन्त (The Infinite in the finite). (३) आत्म-सूर्य और माया (The Sun of Life on the wall of mind). (४) ईश्वर भक्ति. (५) व्यावहारिक वेदान्त. (६) पत्र-मंजूषा ७ माया (maya).

'तीसरा भाग:'—(१) राम परिचय. (२) वास्तविक ात्मा (The real Self). (३) धर्म-तत्व. (४) ब्रह्मचर्य ५) अकबरे-दिल्ली. (६) भारत वर्ष की वर्तमान आवश्यकतायें (The present needs of India). (७) हिमालय (Himalaya). (८) सुमेरु दर्शन (Sumeru-scene). (९) भारत वर्ष की स्त्रियां (Indian woman-ood). (१०) आर्य-माता (About wifehood). ११) पत्र-मंजूषा ।

'चौथा भाग '—(१) भूमिका (Preface by mr. Puran in Vol. I). (२) पाप; आत्मा से उस का सम्बन्ध (Sin Its relation to the Atman or real Self). (३) पाप के पूर्व लक्षण और निदान (Prognosis & Diagnosis of Sin). (४) नक़द धर्म. (५) विश्वास या ईमान. (६) पत्र-मंजूषा ।

'पाँचवाँ भाग:'—(१) राम-परिचय. (२) अवतरण (A brief of introduction by the late Lala Amir chand, Published in the fourth volume). (३) सफलता की कुंजी (Lecture on Secret of Success, delivered in Japan). (४) सफलता का रहस्य Lecture on Secret of Success, delivered in America). (५) आत्म-कृपा ।

'छटा भाग:'—(१) प्रेरणा का स्वरूप (Nature of Inspiration). सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग (The way to the fulfilment of all dsires). (३) कर्म. (४) पुरुषार्थ और प्रारब्ध, (५) स्वतंत्रता ।

'सातवाँ और आठवाँ भागः' - रामवर्षा, प्रथम भाग (स्वामी राम कृत भजनों के नौ अध्याय), और दूसरा भाग (जिस के केवल तीन अध्याय दर्ज हैं)।

'नवाँ भाग'—राम वर्षा का दूसरा भाग समाप्त।

'दशवाँ भागः'—(१) हज़रत मूसा का डंडा (The Rod of Moses). (२) सुधार (३) उन्नति का मार्ग या राहे-तरक़्क़ी (४) राम ढिंढोरा (The Problem of India). (५) जातीय धर्म (The National Dharma).

'ग्यारहवाँ भागः'—(१) राम के जीवन पर विचार श्रीयुत पादरी सी, एफ, एण्ड्रयूज़ द्वारा. (२) विजयनी आध्यात्मिक शक्ति (The Spiritual power that wins). (३) लोगों को वेदान्त क्यों नहीं भाता (रिसाला अलफ़ से राम का हस्त लिखित उर्दू-लेख)।

'बारहवाँ भागः'—(१) सुलह कि जंग? गंगा तरंग।

'तेरहवाँ भागः'—(१) "सुलह कि जंग? गंगा तरंग" का अवशिष्ट भाग. (२) आनन्द. (३) राम-परिचय।

'चौदहवाँ भागः'—(१) भारत का भविष्य (The Future of India). (२) जीवित कौन है. (३) अद्वैत. (४) राम।

'पन्द्रहवाँ भागः'—(१) नित्य-जीवन का विधान (The Law of Life Eternal). (२) निश्चल चित्त (Balanced mind). (३) दुःख में ईश्वर (Out of misery to God within). (४) साधारण बातचीत (Informal Talks) (५) पत्र-मंजूषा।

'सोलहवाँ भाग'—(१) ग़ैर मुल्कों के तजरुबे (अनुभव)

(२) अपने घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं (How to make your homes happy). (३) गृस्थाश्रम और आत्मानुभव (Married life & Realization). (४) मांस-भक्षण पर वेदान्त का विचार (Vedantic idea of eating meat).

'सत्तरहवां और अठारहवां भाग' (१) रामपत्र, तीन भागों में विभक्त, अर्थात् बाल्यावस्था से ब्रह्मलीन अवस्था तक जो पत्र राम से अपने पूर्वाश्रम के गुरु भगत धन्नाराम जी को तथा संन्यासाश्रम में अपने अनेक प्रेमियों को लिखे गये,

'उन्नीसवां भाग' (१) सत्य का मार्ग (The Path of Truth). (२) धर्म का अन्तिम लक्ष्य (The Goal of Relgion) (३) परमार्थ निष्ठा और मानसिक शक्तियां (True Spirituality and Psychic Powers). (४) चरित्र सम्बन्धी आध्यात्मिक नियम (The Spiritual Law of character). (५) भारत की ओर से अमेरिका वासियों से विनती (An Appeal to Americans on behalf of India). (६) निजानन्द सकल विभूतियों का तमस्सक है (खुदमस्ती, तमस्सके-अरूज) ।

'भाग वीसवां' (१) स्वर्ग का साम्राज्य (The Kinggom of Heaven). (२) पवित्र अक्षर ओम् (The Sacred syllable Om). (३) मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है (My will is being done). (४). प्रणव-प्रभाव व आत्म-साक्षात्कार (Syllable Om and Self-realization) (५) आत्मानुभव का मार्ग (The way to the Realization of Self). (६) आत्मानुभव पर साधारण वार्तालाप (Infomal Talks on Self-realization).

(७) प्रश्न और उत्तर (Questions and Answers). (८) क्या समाज विशेष की आवश्यकता है ? (Is a particular Society needed ?). (९) आत्मानुभव के मार्ग में कुछ बाधाएं (Some of the obstacles on the way of Realization).

'इक्कीसवां भाग':-(१) जीवनी, परमहंस स्वामी रामतीर्थ (२) प्रस्तावना (सुरजनलाल पांडे) (३) मुखम्मसे-राम (बाबू सुरजनलाल पांडे कृत। (४) स्वामी रामतीर्थ (वनस्पति).

'बाईसवां भाग':—(१) मनुष्य का भ्रातृत्व (The Brotherhood of man) (२) धर्म (Religion). (३) छिद्रान्वेषण और विश्वव्यापी प्रेम (Criticism and Universal Love) (४) रामचरित्र नं० १. (५) राम चरित्र नं० २।

'तेईसवां भाग':—(१) राम-चरित्र नं० २ अवशिष्ट भाग (२) यज्ञ का भावार्थ (The Spirit of Yajna).(३) एकता (४) शान्ति का उपाय (५) भारतवर्ष की प्राचीन अध्यात्मता (The ancient Spirituality of India): (६) सभ्य संसार पर भारतवर्ष का अध्यात्म-ऋण (The Civilized world's spiritual debt to India .(५)कुछ फुटकर कविता (युवा संन्यासी)।

'चौबीसवां भाग:'—(१) अरण्य संवाद नं० १ से १२ तक जो अंग्रेज़ी जिल्द दूसरी के अन्त में दर्ज है (Forest Talks no I to XII). (२) पत्र मंजूषा ।

'पच्चीसवां भाग':—(१) दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-स्वातंत्र्यवाद का समन्वयः (Idealism and Realism Reconciled). (२) वस्तु स्वातंत्र्यवाद और दृष्टि-सृष्टि-वाद

(Realism and Idealism). (३) वेदान्त पर कुछ प्रश्नोंके उत्तर(Replies to some Questions on the Vedanta).. (४)माया, अथवा दुनिया का कब और क्यों (Maya or the when and the why of the world). (५) संसार का आरम्भ कब हुआ (when did the world begin). (६) संमोहन और वेदान्त (Hypnotism and Vedanta , (७) मनुष्य अपने भाग्य का आप ही स्वामी है (Man), The Masler of His own Destiny).

'छब्बीसवां भाग':–मृत्यु के बाद या सब धर्मों की संगति (After Death or All Religions reconciied). (२) कक्षा–प्रश्नों के उत्तर (Replies to class Questions). (३) पुनर्जन्म और पारिवारिक बन्धन (Re-incarnation and Family Ties). (४) मैं प्रकाश स्वरूप हूं (I am All Light). (५)केन्द्र-च्युत न हो (Be not centre out). (६) आत्मानुभव की सहायता या प्राणायाम (Aids to Realization or Pranayama).(७) सोहं (Soham). (८) वेदान्त और साम्यवाद (Vedanta and Socialism). (९) आत्मानुभवके संकेत नं० २ (Hints to Realization no II). (१०) आत्मानुभव के संकेत नं० ३ (Hints to Realization no III). (११) उपदेश-भाग(Fragments)-

'सताईसवां भागः'–(१) पाप की समस्या (The Problem of Sins). (२) भारत वर्ष के सम्बन्ध में तथ्य और आंकड़े. (३) पत्र-मंजूषा (Letters). (४) कविता (Poems).

'अठाईसवां भागः'—राम-हृदय (Heart of Rama),

(२) राम पत्र ।

(अर्थात् ग्रन्थवाली भाग १७ वां १८ वां)

जो लोग ग्रन्थावली के सब खण्ड नहीं मँगवा सकते, वह इसी पुस्तक को अवश्य मँगा कर देखें। इसके पढ़ने से पता चलेगा कि श्री स्वामी जी महाराज को बचपन से ही अपने पथदर्शक (गुरु जी) में कितनी असीम श्रद्धा और अगाध भक्ति थी। स्वामी जी की छात्र-अवस्था के पत्र वर्तमान छात्रों के लिये विशेष उपयोगी हैं।

इन पत्रों के अतिरिक्त जो कुछ इस पुस्तक में और दर्ज है उसे १७, १८ वें भाग की सूची में ऊपर देखो। छपाई, उत्तम, तीन चित्रों से सुसज्जित।

मूल्य साधारण संस्करण विना जिल्द १।)
विशेष संस्करण सजिल्द १।।।)

---

(३) राम वर्षा ।

(अर्थात् ग्रन्थावली के भाग ७ ८, ९)

भजन के प्रेमियों के लिये राम भगवान् की नोटबुकों में पाये हुए जो भजन नौ अध्यायों में विभक्त और ग्रन्थावली के तीन भागों में छपे थे, उन्हें एक जिल्द में कर दिया गया है।

इन (भजनों) का प्रत्येक शब्द अलौकिक शक्ति और इनके पाठ तथा श्रवण करने से निज स्वरूप का श्रवण मनन और निदिध्यासन भली प्रकार हो जाता है। जो इन्हें पढ़े या सुनेगा वह अपने अनुभव से आप ही साक्षी देगा।

मूल्य सम्पूर्ण राम वर्षा सजिल्द २)

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के पट्ट शिष्य श्रीमान् आर. एस. नारायण स्वामी द्वारा व्याख्या की हुई।

(४) श्रीमद्भगवद्गीता।

प्रथम भाग—अध्याय ६ पृष्ठ संख्या ८३२।

मूल्यः-साधारण संस्करण २), विशेष संस्करण ३) रु०

यूं तो आज कल श्रीमद्भगवद्गीता की कितनी ही व्याख्या प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु जिस कारण यह व्याख्या अति उत्तम गिनी जाती है, उसे प्रतिष्ठित पत्रों से ही आप सुन लीजिये :

"सरस्वती" का मत है कि, "स्वामी जी ने इस गीता-संस्करण को अनेक प्रकार से अलंकृत करने की चेष्टा की है। पहले मूल, उसके बाद अन्वयांकानुसार प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है। उसके बाद अन्वयार्थ और व्याख्या है। इसके सिवा जगह २ पर टिप्पणियां दी गई हैं जो बड़े महत्त्व की हैं। बीच २ में जहां मूल का विषयान्तर होता दिखाई पड़ा है, वहां सम्बन्धिनी व्याख्या लिख कर विषयका मेल मिला दिया गया है। स्वामीजी ने एक बात और भी की है। आप ने प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस का संक्षिप्त सार भी लिख दिया है। इस से साधारण लिखे पढ़े लोगों का बहुत हित साधन हुआ है। मतलब यह है कि क्या बहुज्ञ और क्या अल्पज्ञ दोनों के संतोष का साधन स्वामी जी के उस संस्करण में विद्यमान है। गीता का सरलार्थ व्यक्त करने में आपने कसर नहीं उठा रक्खी।"

',अभ्युदय कहता है:-" "हमने गीता की हिन्दी में अनेक व्याख्याएं देखी हैं, परन्तु श्री नारायण स्वामी की व्याख्या के

समान सुन्दर, सरल और विद्वत्तापूर्ण दूसरी व्याख्या के पढ़ने का सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ है। स्वामी जी ने गीता की व्याख्या किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त की अथवा अपने मत की विशेषता प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं की है। आप का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने जो कुछ उपदेश दिया है उस के उत्कृष्ट भाव को पाठक समझ सकें"

'अवधवासी लिखता है:'—"छपाई, कटाई कागज़ आदि सभी कुछ बहुत सुन्दर है। आकार मंझोला। पृष्ट संख्या ८३२, प्रस्तावना बड़ी ही पांडित्यपूर्ण और मार्मिक है जिस में प्रसंगवश अवतार, सिद्धि आदि गूढ़ विषयों का अत्यन्त रोचक, प्रौढ़ और विश्वासोत्पादक वर्णन हुआ है, कर्म अकर्म का विवेचन जो गीता का बड़ा कठिन विषय है, ऐसी सुन्दरता से किया गया है कि शास्त्रज्ञ और साधारण पाठक दोनों ही लाभ उठा सकते हैं। सारांश यह कि शास्त्र-दृष्टि से यह ग्रन्थ हिन्दी संसार का बेजोड़ रत्न है। शांकर भाष्य, लोकमान्य तिलक कृत गीता रहस्य, अथवा ज्ञाने-श्वरी टीका हिन्दी की अपनी वस्तुएँ नहीं हैं। ग्रन्थ सर्वथा आदरणीय और संग्रह के योग्य हुआ है। गीता को युक्ति पूर्वक समझाने के लिये यह अपूर्व साधन श्री स्वामी जी ने प्रस्तुत कर दिया है"

'प्रेक्टिकल मेडिसिन' (दिल्ही) का मतः—"अन्तिम व्याख्या ने जिस को अति विद्वान् श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ने गीता रहस्य नाम से प्रकाशित किया है, हमारे चित्त में बड़ा प्रभाव डाला था, परन्तु श्रीमान् आर० एस० नारायण स्वामी की गीता की व्याख्या ने इस स्थान को छीन लिया है। इस पुस्तक ने हमें और हमारे मित्रों को

इतना मोहित कर लिया है कि हमने उसे अपने नित्य प्रातः स्मरण का पाठ पुस्तकों में सम्मिलित कर दिया है"।

'चित्रमय जगत पूना' का मतः—हिन्दी में गीता का संस्करण अपने ढंग का एक ही निकला है। क्योंकि अभी इस प्रथम भाग में केवल ६ अध्याय ही आ सके हैं, और उन की व्याख्या इतने बड़े ग्रन्थ में हुई है, अर्थात् स्वामी जी ने इसे कितनी ही विशेषताओं से युक्त किया है। भूमिका, प्रस्तावना, गीता-रहस्य, श्लोकानुक्रमणिका, पूर्व वृत्तान्त आदि के बाद मूल गीता का शब्दार्थ और व्याख्या तथा टिप्पणी लिखी गई है। अर्थात् इन सब अलंकारों के सिवाय स्वामी जी ने स्थान २ पर विविध महत्पूर्ण फुट नोट देकर पुस्तक को सर्वांग सम्पन्न ही बना दिया है। साथ ही जहां मूल का विषयान्तर होता दिखाई दिया, वहां तत्सम्बन्धिनी व्याख्या देकर वर्णन की शृंखला बद्ध कर दिया है। इसी प्रकार प्रत्येक अध्याय के अन्त में उसका सार देकर स्वामी जी ने इसे अल्पज्ञ और बहुज्ञ सबके समझने योग्य बना दिया है। गीता का सरलार्थ तो वैसे ही समझ में आ सकता है, किन्तु जिन गूढ़ाशयों को प्रकट करने के उद्देश्य से यह टीका लिखी गई है, वह प्रस्थापक ही कहा जा सकता है। ....

स्वामी राम की फोटो वा चित्र

राम की भिन्न २ आकृति वा आसन की सुन्दर फोटो (केबिनट साइज़) मूल्य १) प्रति कापी।

राम की बटन फोटो ॥)

राम तथा उनके गुरू आदि के सादे चित्र, मूल्य प्रति कापी ~) और दस कापी ॥)

——:o:——